वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 434
ISBN-978-93-84003-26-5

श्रीगौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-विचारणीय विषय

–लेखिका –

**जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, दिव्यशक्ति,
दो बार डी. लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी**

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (13 जुलाई 2014) को श्री गौतम गणधर स्वामी के 2571 वें 'गणधर दिवस' पर युगप्रवर्तिका चारित्रचन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''श्री गौतमगणधर वर्ष'' (2014–2015) के अन्तर्गत रक्षाबंधन पर्व के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण 1100 प्रतियाँ	वीर नि. सं. 2540 श्रावण शुक्ला पूर्णिमा (10 अगस्त 2014)	मूल्य 24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

**कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.**

सम्पादकीय

-पीठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

भगवान महावीर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री गौतम गणधर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री कुंदकुंद आदि पूर्वाचार्य हम सभी का मंगल करें और जैनधर्म हम सभी के लिए मंगलकारी होवे।

इस एक मंगलाचरण में श्री महावीर स्वामी से लेकर परम्परागत सभी पूर्वाचार्यों की स्तुति की गई है। आज हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें भगवान महावीर की साक्षात् वाणी को पढ़ने-सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीर्थंकर की परम्परा, गणधर की परम्परा, चतुर्विध संघ-मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका (श्रावक-श्राविका) की परम्परा अनादि है। यह अनादि काल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी।

वर्तमान में बीसवीं शताब्दी में परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का हम सभी पर परम उपकार हैं, जो कि हमें नित्य नई-नई बातों से, प्राचीन रहस्यों से अवगत कराती हैं। इनके जीवन का हरपल नई-नई कृतियों को, नई-नई रचनाओं को लिए रहता है। जिनकी लेखनी में, वाणी में सरस्वती का वास है तभी तो षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की 16 पुस्तकों पर संस्कृत टीका लिखकर जैनसमाज को एक महान कृति प्रदान की है। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद किया है। 400 ग्रंथों की रचना की है। जिनमें अभी कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। आज सारे विश्व में जिनके द्वारा रचित इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र आदि विधानों की धूम मची है।

जिन्होंने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके जैन भूगोल-जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचना को धरती पर साकार किया है। जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर 108 फुट उत्तुंग ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। भगवान का चेहरा (मुख) का कार्य पूर्ण होने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तक 'श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन विचारणीय विषय' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। चतुर्थकालीन श्री गौतमस्वामी की कृति में परिवर्तन करना एक अनुचित कार्य है। अतः इस पुस्तक को पढ़कर सभी भव्य जीव प्राचीन, शुद्ध प्रतिक्रमण पाठ को ही पढ़े, ऐसी मंगल भावना है। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करे, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जैनधर्म के वर्तमानकालीन अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामी हुए हैं। जिन्होंने भगवान की दिव्यध्वनि को सुनकर अन्तर्मुहूर्त में-48 मिनट में द्वादशांग की रचना कर दी थी। श्रीगौतमस्वामी के मुख से निकली चैत्यभक्ति का सभी साधु एवं व्रती श्रावकगण प्रतिदिन पाठ करते हैं। परम्परा से मौखिक ज्ञान से प्राप्त श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली हुई चार महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हम सभी को पढ़ने को मिल रही है, यह हम सभी का परम सौभाग्य है।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत 4 रचनाओं में-1. चैत्यभक्ति , 2. दैवसिक प्रतिक्रमण, 3. पाक्षिक प्रतिक्रमण एवं 4. श्रावक प्रतिक्रमण हैं।

यह पुस्तक **'श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन विचारणीय विषय'** की आवश्यकता क्यों पड़ी। इसके लिए जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् 1980 से श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन, परिवर्धन देखा, जो कि अनुचित कार्य हुआ है। इसके लिए पूज्य माताजी ने प्राचीन एवं नए ग्रंथों को पढ़-पढ़कर उसमें पाठ भेद वाले शब्दों को चार्ट रूप में इस पुस्तक में दिया है। क्रियाकलाप, धर्मध्यान दीपक, नित्यभक्ति पाठ, यतिक्रिया मंजरी, मुनिचर्या इन पुस्तकों में प्राचीन एवं शुद्ध पाठ है और श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह, श्रमणाचार, सुज्ञान श्रमणचर्या, दिनचर्या आदि में परिवर्तित, परिवर्धित पाठ है। इस पुस्तक में पूज्य माताजी ने 11 पुस्तकों से 27 पाठ भेद चार्ट में दिए हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पाठ भेद हैं।

अब यह विचार करने का विषय है कि चार ज्ञानधारी श्री गौतम स्वामी को क्या व्याकरण का ज्ञान नहीं था ? क्यों उनकी कृतियों में परिवर्तन, परिवर्धन किया गया। जिसने भी यह कार्य किया, कराया, अति साहस का कार्य है। पूज्य माताजी का तो कहना है कि हमें पूर्वाचार्यों की कृति में परिवर्तन नहीं करना चाहिए और अगर हमें किसी की कृति में कुछ परिवर्तन करना है तो उसे नीचे टिप्पण में देना चाहिए। मूल पाठ को कभी नहीं बदलना चाहिए।

इस पुस्तक में सर्वप्रथम मंगलाचरण करते हुए पूज्य माताजी ने धर्मतीर्थ की उत्पत्ति के बारे में बताते हुए लिखा है कि वर्धमान भगवान ने तीर्थ की उत्पत्ति की है। अर्थकर्ता श्री महावीर स्वामी एवं ग्रंथकर्ता श्री गौतम स्वामी हैं। इसके बाद महामंत्र णमोकार मंत्र के बारे में लिखा है कि यह णमोकार मंत्र अपराजित मंत्र, अनादि मंत्र सार्वभौम मंत्र है। 'चत्तारि मंगल पाठ' भी अनादिसिद्ध मंत्र है ऐसा हस्तलिखित वसुनन्दि प्रतिष्ठासार संग्रह में लिखा है। इस अनादिसिद्ध मंत्र चत्तारि मंगल पाठ को भी वर्तमान में विभक्ति लगाकर बदल दिया गया है, जो कि गलत है।

इसके बाद श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय संक्षेप में धवला पुस्तक-9 एवं प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से दिया है और प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से यह सिद्ध किया है कि ये रचनाएँ श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली हुई हैं।

पं. श्री लालाराम जी शास्त्री ने दशभक्त्यादि संग्रह में सभी भक्तियों का अर्थ किया है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में वीर नि. सं. 2458 में इन्होंने लिखा है कि चैत्यभक्ति चतुर्थकाल की रचना है।

पुनः श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर दिखाया है। जैसे-नव पदार्थ, द्वादश तप, बंध के कारण, पच्चीस भावना, श्रावक के 12 व्रत गाथाएं वा सूत्र अपरिवर्तनीय हैं। इसके बाद श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन, परिवर्धन उचित नहीं है, इसमें प्राचीन पाठ एवं बदले पाठ को दिखाया है। पुनः पाठ परिवर्तन का चार्ट भी दिया है। इसके बाद श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय, स्तुति, चालीसा एवं भजन है।

यह लघु पुस्तक होते हुए भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसे पढ़कर सभी साधु एवं व्रती श्रावकगण प्राचीन प्रतिक्रमण पाठ को ही पढ़ें। परिवर्तित, परिवर्धित पाठ को न पढ़े। ऐसी पूज्य माताजी की मंगल भावना है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा रखते हुए हम सभी अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें। पूज्य माताजी का संपूर्ण जैन समाज पर परम उपकार है जो कि हम सभी को आगम की बातों से अवगत कराकर हमें मोक्षमार्ग में लगा रही हैं। इन्हीं शब्दों के साथ पूज्य माताजी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए कोटि-कोटि नमन करती हूँ।

दो शब्द

संघस्थ-आर्यिका स्वर्णमती

मंगलं स्यान्महावीरो, श्री गौतमश्च मंगलम्।
जिन शासनमाचंद्रं, स्थेयात् कुर्याच्च मंगलम्।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। उनके 3 बार दर्शन करने वाली एवं उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली और उनके प्रथम पट्टशिष्य चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में पीछीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, परम पूज्य 105 गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं, जिन्होंने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति धर्म गुरुओं से सहज ही हो जाती है जैसा कि श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।

अर्थात् अज्ञानी की उपासना-संगति से प्राणी अज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञानी की उपासना से ज्ञान प्राप्त करता है, क्योंकि 'जिसके पास जो कुछ है वह वही वस्तु प्रदान करता है' यह सुप्रसिद्ध वचन है।

किसी भी शास्त्र को पढ़ते समय यदि अर्थ समझ में नहीं आता है तो पूज्य माताजी कहती हैं कि मेरे गुरू आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहा करते थे-

'पठितव्यं खलु पठितव्यं अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति' अर्थात् हमेशा पढ़ते रहो-पढ़ते रहो, आगे-आगे विषय स्पष्ट होगा। जैसे श्रावक की दैनिक षट् क्रियाओं में स्वाध्याय एक क्रिया है, उसी प्रकार मुनियों के 6 अंतरंग तपों में स्वाध्याय नाम का एक तप है। कहा भी है-**'स्वाध्यायः परमं तपः।'**

इस पुस्तक की रचना करके पूज्य माताजी ने जैन समाज पर महान उपकार किया है। भगवान महावीर की साक्षात् दिव्यध्वनि को सुनकर अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग की रचना करने वाले श्री गौतमस्वामी की कृतियों को पढ़कर उसे हृदयंगम कर हम अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें और परम्परा से एक दिन मोक्ष पद को प्राप्त करें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटिशः नमन।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

विषय सारणी

क्र.सं.		पृष्ठ सं.
1.	गणधरवलय मंत्र	1
2.	गणधरवलय मंत्र का पद्यानुवाद	2
3.	मंगलाचरण	4
4.	धर्मतीर्थ की उत्पत्ति	4
5.	महामंत्र–णमोकार मंत्र	8
6.	चत्तारि मंगल पाठ	10
7.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय	12
8.	श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से)	15
9.	पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्गार	18
10.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर–1. नव पदार्थ, 2. द्वादश तप, 3. बंध के कारण, 4. पच्चीस भावना, 5. श्रावक के 12 व्रत 6. गाथाए वा सूत्र अपरिवर्तनीय हैं	21
11.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन–परिवर्धन उचित नहीं है।	48
12.	ग्रंथों के प्रमाण के चार्ट	52
13.	श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय	63
14.	श्री गौतमस्वामी स्तोत्र	65
15.	श्री गौतमस्वामी स्तोत्र	66
16.	श्री गौतमस्वामी चालीसा	67
17.	श्री गौतमस्वामी का भजन	70
18.	गीत	71
19.	जिनवाणी स्तुति	72

श्रीगौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-विचारणीय विषय

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

–गणधरवलय मंत्र–

णमो जिणाणं । णमो ओहिजिणाणं।।
णमो परमोहिजिणाणं। णमो सव्वोहिजिणाणं।।
णमो अणंतोहिजिणाणं। णमो कोट्ठबुद्धीणं।।
णमो बीजबुद्धीणं। णमो पादाणुसारीणं।।
णमो संभिण्णसोदाराणं। णमो सयंबुद्धाणं।।
णमो पत्तेयबुद्धाणं। णमो बोहिय बुद्धाणं।
णमो उजुमदीणं। णमो विउलमदीणं।।
णमो दसपुव्वीणं। णमो चउदसपुव्वीणं।।

णमो अट्ठंग- महा- णिमित्त-कुसलाणं।।
णमो विउव्व- इड्ढि- पत्ताणं।।
णमो विज्जाहराणं। णमो चारणाणं।।
णमो पण्णसमणाणं। णमो आगास-गामीणं।।
णमो आसीविसाणं। णमो दिट्ठिविसाणं।।
णमो उग्गतवाणं। णमो दित्ततवाणं।।
णमो तत्ततवाणं। णमो महातवाणं।
णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं।।
णमो घोर परक्कमाणं। णमो घोरगुण-बंभयारीणं।।
णमो आमोसहि-पत्ताणं। णमो खेल्लोसहि-पत्ताणं।।
णमो जल्लोसहि–पत्ताणं। णमो विप्पोसहिपत्ताणं।।
णमो सव्वोसहिपत्ताणं। णमो मणबलीणं।।
णमो वचिबलीणं । णमो कायबलीणं।।
णमो खीरसवीणं। णमो सप्पिसवीणं।।
णमो महुरसवीणं। णमो अमियसवीणं।।
णमो अक्खीण-महाणसाणं। णमो वड्ढमाणाणं।।
णमो सिद्धायदणाणं। णमो भयवदो
महदि-महावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसीणो चेदि।
जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण।।

गणधरवलय मंत्र का पद्यानुवाद

–शंभु छंद–

मैं नमूँ जिनों को जो अर्हन्, अवधीजिन मुनि को नमूँ नमूँ।
परमावधि जिन को नमूँ तथा, सर्वावधि जिन को नमूँ नमूँ।।
मैं नमूँ अनंतावधि जिन को, अरु कोष्ठबुद्धि युत साधु नमूँ।
मैं नमूँ बीजबुद्धीयुत मुनि, पादानुसारियुत साधु नमूँ।।1।।

संभिन्नश्रोतृयुत साधु नमूँ, मैं स्वयंबुद्ध मुनिराज नमूँ।
प्रत्येक बुद्ध ऋषिराज नमूँ, पुनि बोधित बुद्ध मुनीश नमूँ।।
ऋजुमतिमनपर्यय साधु नमूँ, मैं विपुलमतीयुत साधु नमूँ।
मैं नमूँ अभिन्न सुदशपूर्वी, चौदशपूर्वी मुनिराज नमूँ।।2।।

अष्टांगमहाणिमित्तकुशली, नमूँ नमूँ विक्रियाऋद्धि प्राप्त।
विद्याधरऋषि को नमूँ नमूँ मैं, संयत चारणऋद्धि प्राप्त।।
मैं प्रज्ञाश्रमण मुनीश नमूँ, आकाशगामि मुनिराज नमूँ।
आशीविषयुत ऋषिराज नमूँ, दृष्टीविषयुत मुनिराज नमूँ।।3।।

मैं उग्रतपस्वी नमूँ दीप्ततपि, नमूँ तप्ततपसाधु नमूँ।
मैं नमूँ महातपधारी को, अरु घोरतपोयुत साधु नमूँ।।
मैं नमूँ घोरगुणयुत साधू, मैं घोरपराक्रम साधु नमूँ।
मैं नमूँ घोरगुणब्रह्मचारि, आमौषधिप्राप्त मुनीश नमूँ।।4।।
क्ष्वेलौषधिप्राप्त मुनीश नमूँ, जल्लौषधि प्राप्त मुनीश नमूँ।
विप्रुष औषधियुत साधु नमूँ, सर्वौषधि प्राप्त मुनीश नमूँ।।
मैं नमूँ मनोबलि मुनिवर को, मैं वचनबली ऋद्धीश नमूँ।
मैं कायबली मुनिनाथ नमूँ, मैं क्षीरस्रावी मुनिराज नमूँ।।5।।

मैं घृतस्रावी मुनिराज नमूँ, मैं मधुस्रावी मुनिराज नमूँ।
मैं अमृतस्रावी साधु नमूँ, अक्षीणमहानस साधु नमूँ।।
मैं वर्धमान ऋद्धीश नमूँ, मैं सिद्धायतन समस्त नमूँ।
मैं भगवन् महति महावीर, श्री वर्धमान बुद्धर्षि नमूँ।।6।।

–शेर छंद–

जिसके निकट में धर्मपथ को प्राप्त किया हूँ।
उनके निकट ही विनयवृत्ति धार रहा हूँ।।
नित काय से वचन से और मन से उन्हीं को।
पंचांग नमस्कार करूँ भक्ति भाव सों।।

मंगलाचरण

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।1।।

पद्यानुवाद

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।1।।

धर्मतीर्थ की उत्पत्ति

"वर्धमान भगवान ने तीर्थ की उत्पत्ति की है।[1]" अठारह भाषा और सात सौ क्षुद्र भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं" तथा बीज पदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं।।[2]"

संपहि वड्ढमाणतित्थगंधकत्तारो वुच्चदे–

दिव्यध्वनि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में आया है।

जोयणपमाणसंट्ठिद–तिरियामरमणुवणिवहपडिबोधो।
मिदमधुरगभीरतरा – विसदविसयसयलभासाहिं।।60।।
अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ।।61।।
एदासिं भासाणं तालुवंदतोट्ठकंठवावारं।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकरभासो।।62।।[1]

एक योजन प्रमाण तक स्थित तिर्यंच देव और मनुष्यों के समूह को बोध प्रदान करने वाली भगवान की दिव्यध्वनि होती है। यह दिव्यध्वनि

1. वड्ढमाण भडारएण तित्थमुप्पइदं।" (धवला पृ. 9 पृ. 113)।, 2. वही पुस्तक, पृ. 127।

मृदु–मधुर, अतिगंभीर और विशद–स्पष्ट विषयों को कहने वाली संपूर्ण भाषामय होती है। यह संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह भाषा और सात सौ लघु भाषाओं में परिणत होती हुई, तालु–ओंठ–दाँत तथा कंठ के हलन–चलनरूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजीवों को आनंदित करने वाली होती हैं ऐसी दिव्यध्वनि के स्वामी तीर्थंकर भगवान होते हैं।।60-61-62।।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं–

''उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या हैं ?'' ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से सन्देह को प्राप्त हुए, पाँच सौ, पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से गर्व रहित हुए, बुद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त वर्धमान भगवान के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्श पूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिनभगवान का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतमगोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग आदि बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग की आदि में प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति गणधर देव भट्टारक श्री वर्धमान स्वामी के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। कहा भी है–

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पडिवदुपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।40।।

''वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई[2]।

1. तिलोयपण्णत्ति अध्याय 1, पृ. 8, गाथा 60-61-62।
2. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65।

षट्खंडागम ग्रंथ में श्रीवीरसेनस्वामी कहते हैं–

''तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम–जणिदचउ–रमलबुद्धिसंपण्णेण ब्रह्मणेण गोदमगोत्तेण सयलदुस्सुदि–पारएण जीवाजीवविसयसंदेह–विणासणट्ठमुवगयवड्ढमाण-पादमूलेण इंदिभूदिणावहारिदो[1]।।2।।

इस प्रकार केवलज्ञानी भगवान महावीर के द्वारा कहे गये पदार्थ को उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययरूप निर्मल ज्ञान से युक्त संपूर्ण अन्यमतावलंबी वेद–वेदांग में पारंगत, गौतमगोत्रीय ऐसे इन्द्रभूति ब्राह्मण ने जीव–अजीव विषयक संदेह को दूर करने के लिए श्रीवर्द्धमान भगवान के चरणकमल का आश्रय लेकर ग्रहण किया अर्थात् प्रभु की दिव्यध्वनि को सुना।

इसीलिए भगवान महावीर 'अर्थकर्ता' कहलाये हैं।

'पुणो तेणिंदभूदिणा भावसुदपज्जय–परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण रयणा कदा।।[2]

पुनः उन इन्द्रभूति गौतमस्वामी ने भावश्रुत पर्याय से परिणत होकर बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की रचना एक ही मुहूर्त में कर दी।

सारांश यह है कि आज से पच्चीस सौ सत्तर (2570)[3] वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी थी यही प्रथम देशना दिवस–'वीरशासन जयंती' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त करके द्वादशांग श्रुत की रचना की थी जो कि मौखिक मानी गई है उसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता है।

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार आज कोई भी द्वादशांग या अंगबाह्य के ग्रंथ नहीं हैं क्योंकि इनको लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता था। परम्परागत आचार्यों ने जो कुछ मौखिक श्रुतज्ञान गुरुवों से प्राप्त किया, कालांतर में श्रीधरसेनाचार्य के शिष्य पुष्पदंत–भूतबलि नाम के दो आचार्यों ने षट्खंडागम

1. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65। 2. षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित, पुस्तक 1, पृ. 66। 3. वर्तमान में वीर निर्वाण संवत् 2540 है, इससे तीस वर्ष पूर्व श्री महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी थी।

ग्रंथ को लिपिबद्ध करके रचना की है। ऐसा इन्द्रनंदि आचार्य आदि ने श्रुतावतार आदि ग्रंथों में लिखा है।

इसी प्रकार श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत ये महान रचनायें आज वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। **चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमणदण्डकसूत्रादि**। ये ग्रंथ मौखिकरूप से आचार्यों को प्राप्त होते रहे हैं पुनः किन्हीं महान आचार्यों ने इन्हें लिपिबद्ध करके हमें और आप सभी भव्यात्माओं के लिये सुरक्षित रखा है।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''णमो जिणाणं''** आदि गणधरवलयमंत्र हैं एवं दैवसिक–पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''यः सर्वाणि चराचराणि''** वीरभक्ति पाठ है। इन **'णमो जिणाणं'** आदि गणधरवलय मंत्रों को श्रीभूतबलि आचार्यदेव ने षट्खंडागम के अंतर्गत तृतीय 'वेदनाखंड' के रचते समय मंगलाचरणरूप में लिया है। जिनकी विस्तृत टीका (पुस्तक नवमी में) टीकाकार श्री वीरसेनाचार्यदेव ने की है।

एवं श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण दण्डकसूत्रों की संस्कृत टीका की है।

महामंत्र णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।1।।

इस महामंत्र को णमोकार मंत्र, अपराजित मंत्र, अनादि मंत्र व सार्वभौम मंत्र भी कहते हैं।

आज के उपलब्ध सम्पूर्ण जैन वाङ्मय में दो ही मंत्र अनादिनिधन मान्य हैं– 1. णमोकार महामंत्र, 2. चत्तारि मंगल पाठ।

श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने कहा है—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः।
तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।3।।

श्लोकार्थ—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्तयुग पहले व्यतीत हो चुके हैं, उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।

'णमोकार मंत्रकल्प' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने भी कहा है—

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्।।63।।
महापंचगुरूणां, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये।।68।।

श्लोकार्थ—नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत में ज्येष्ठ–सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।63।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।68।।

श्री गौतमस्वामी ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में कुछ पंक्तियाँ ऐसी रखी हैं,जिनसे भी स्पष्ट है कि यह महामंत्र व चत्तारिमंगल पाठ अनादिकालीन हैं। यथा—

''काऊण णमोक्कारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।

आइरिय-उवज्झायाणं, लोयम्मि य सव्वसाहूणं।।''

''णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आयरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे सरणपदे।।'' (पाक्षिक प्रतिक्रमण)

-पद्यानुवाद-

अरिहंतों को कर नमस्कार सिद्धों को नमस्कार करके।
आचार्य उपाध्याय को व लोक में सर्वसाधु को भी नमते।।
नमस्कार पद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्य पद में।
उपाध्याय साधूपद मंगल-लोकोत्तम शरणं पद में।।

'णमोक्कारपदे' आदि दण्डक सूत्रों में णमोकार पद में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुपद ये पांच पद हैं तथा मंगलपद, लोकोत्तमपद व शरणपद से चत्तारि मंगल पाठ आ जाता है, क्योंकि चत्तारि मंगल पाठ में– चत्तारि मंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा और चत्तारिसरणं पद ही मुख्य है।

षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक 9 में कालशुद्धि में साधुओं के लिए श्वासोच्छ्वासपूर्वक महामंत्र जपने का विधान है। इससे भी स्पष्ट होता है कि इस महामंत्र को श्वासोच्छ्वासपूर्वक जपने की विधि अनादि है।

महामंत्र को 108 बार जपने से 300 (324) श्वासोच्छ्वास हो जाते है। इस एक जाप्य से एक उपवास का फल प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित हैं।

श्री गौतमस्वामी की स्तुति

गणिनी ज्ञानमती

नौमि गौतमस्वामिन् ! त्वां, वीरप्रभोर्गणीश्वरम्।
सवर्द्धिधारिणं देवं, चतुर्ज्ञानसमन्वितम्।।1।।
वीर दिव्यध्वनेर्हेतुं, गणाधीशं गणेशिनम्।
द्वादशांगस्य कर्तारं, सज्ज्ञानर्द्धयै नमाम्यहम्।।2।।

चत्तारिमंगल पाठ

चत्तारि मंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

इसलिए ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'–नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है। यह पाठ कुछ वर्षों से अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण–'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् 1963 से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. 2054 तक में प्रकाशित है। पृ. 309 पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. 2451 में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ 40 पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. 2452 में प्रकाशित है, उसमें पृ. 81 पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. 2443 में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. 2462 में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं–अरहंत लोगुत्तमा,..... अरहंत सरणं पव्वज्जामि यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है ? क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

नया पाठ–

चत्तारि मंगलं–अरहंता मंगलं...., अरहंता लोगुत्तमा....., अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि.....।

यह पाठ कुछ वर्षों से ही अनुमानतः श्वेताम्बर परम्परा से नया आया है। ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि विद्वानों ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्द्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

चारित्र के बिना मात्रज्ञान सिद्धिदायक नहीं है

सव्वं पिहि सुदणाणं सट्ठु सुगुणिदं पि सुट्ठु पढिदं पि।
समणं भट्ठचरित्तं णहु सक्को सुग्गइं णेदुं।।14।।

जडि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।
जदि सिक्खिऊण अयणं करेदि किं तस्स सिक्ख फलं।।15।।

अर्थ– संपूर्ण भी श्रुतज्ञान कालादि शुद्धिपूर्वक प्राप्त किया गया है तथा परिणामों की विशुद्धि से बारम्बार उसका अभ्यास भी किया गया है उसका व्याख्यान करने से तथा हृदय से सम्यक्धारण करने पर भी वह ज्ञान भ्रष्ट-चारित्र यति को अथवा चारित्र रहित को सद्गति में पहुँचाने के लिए समर्थ नहीं है। अतः चारित्र ही प्रधान है।

यदि दीपक हाथ में होते हुए भी कोई गड्ढे या कुएं में गिरता है तो दीपक उसका क्या करेगा? यदि ज्ञान प्राप्त करके भी कोई अनय-चरित्र का विनाश करता है तो उसकी शिक्षा का क्या फल है? अर्थात् श्रुतज्ञान का फल चारित्र धारण करना है यदि पढ़कर भी चारित्र से विमुख रहा तो वह ज्ञान के फल को नहीं प्राप्त कर सकता है।

–श्री कुन्दकुन्द देव

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय

1. **चैत्यभक्ति**—यह श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत है।

2. **निषीधिका दण्डक**–इस दैवसिक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत प्रतिक्रमण भक्ति में "निषीधिका दण्डक" आता है। इसमें प्रथम पद जो **"णमो णिसीहियाए"** है, उसका अर्थ टीकाकार ने 17 प्रकार से किया है।

इस निषीधिका दण्डक में श्रीगौतमस्वामी ने अष्टापदपर्वत, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी आदि की भी वंदना की है।

जब चारज्ञानधारी सर्वऋद्धि समन्वित गौतम गणधर इन तीर्थ क्षेत्रों की वंदना करते हैं, तब आज जो अध्यात्म की नकल करने वाला कोई यह कहे कि "यदि साधु के तीर्थ वंदना का भाव हो जाये तो उसे प्रायश्चित लेना चाहिए। ऐसा कथन सर्वथा अनुचित है।

3. **वीरभक्ति**—सर्वज्ञ का लक्षण, धर्म का लक्षण आदि इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण विषय हैं।

4. **गणधरवलय मन्त्र**–बड़ा प्रतिक्रमण जो कि पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकरूप में किया जाता है। उसकी टीका के प्रारम्भ में टीकाकार कहते हैं–

"वृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि।।"

'श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं वृहत्प्रतिक्रमण–लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि"।

ये **"णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं"** आदि 48 मंत्र गणधरवलय मन्त्र कहे जाते हैं।। बृहत्प्रतिक्रमणपाठ में प्रतिक्रमणभक्ति में इनका प्रयोग है।

इन मंत्रों का मंगलाचरण धवला की नवमी पुस्तक में है–

एवं दव्वट्ठिय जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म–पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियाणुग्गहट्ठमुत्तर सुत्ताणि भणदि।[1]

दूसरे सूत्र की उत्थानिका में विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है।

1. धवला पुस्तक 9, पृ. 12।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय से जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्म प्रकृति प्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिक नय युक्त शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं–

णमो ओहिजिणाणं।।2।।

ये मंत्र आदि श्रीगौतमस्वामी द्वारा रचित ही हैं। इसके लिये षट्खंडागम आदि के प्रमाण देखिये।

षट्खंडागम में ये मंत्र 44 हैं और प्रतिक्रमण पाठ में 48 हैं।

(48) णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।।44।

वर्धमान बुद्ध ऋषि को नमस्कार हो।।44।।

शंका–जबकि वर्धमान भगवान् को पूर्व में नस्मकार किया जा चुका है तो फिर यहाँ दुबारा नमस्कार किसलिये किया गया है ?

समाधान—जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
कायेण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण[1]।।

'जिनके समीप धर्मपथ प्राप्त हो, उनके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये तथा उनका सिर झुकाकर पांच अंग—पंचांग एवं काय, वचन और मन से नित्य ही सत्कार–नमस्कार करना चाहिये।' इस आचार्य परंपरागत नियम को बतलाने के लिये पुनः नमस्कार किया गया है।

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में यह मंत्र ऐसा है–

णमो भयवदो महदिमहावीर वड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि।

जो भगवान सहज विशिष्ट मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञान के धारी और पूजा के अतिशय को प्राप्त हैं, महतिमहावीर और वर्धमान नाम के धारक अंतिम तीर्थंकर हैं, बुद्धर्षि–प्रत्यक्षवेदी–केवलज्ञान के धारी हैं। रुद्र के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतने से 'महतिमहावीर' यह नाम प्रसिद्ध हुआ है। इन अंतिम तीर्थंकर के वर्धमान, वीर, महावीर, सन्मति और महतिमहावीर ऐसे पांच नाम विख्यात हैं। ऐसे वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे।

5. **सुदं मे आउस्संतो!**—इसमें मुनिधर्म एवं श्रावक धर्म का वर्णन है।

1.षट्खंडागम (धवला) पु. 9, पृ. 12। 2. षट्खंडागम (धवला टीका.) पु. 9, पृ. 103।

6. **श्रावक प्रतिक्रमण**—इसमें पाक्षिक श्रावक से लेकर उत्कृष्ट श्रावक क्षुल्लक, ऐलक तक की ग्यारह प्रतिमाओं का प्रतिक्रमण है।

7. **दैवसिक प्रतिक्रमण**—मुनि–आर्यिका आदि जिस प्रतिक्रमण को प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल में करते हैं वह दैवसिक–रात्रिक प्रतिक्रमण है।

8. **पाक्षिक प्रतिक्रमण**—पन्द्रह दिन में होने वाला या चार महीना या वर्ष में होने वाला बड़ा प्रतिक्रमण है। अष्टमी क्रिया में होने वाली आलोचना–ये तीनों प्रतिक्रमण श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं। यह रचनायें साक्षात् उनके मुखकमल से विनिर्गत हैं।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा–

''जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम।
सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

श्री गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

''श्री गौतमस्वामी–मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिन–मुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्ट-देवताविशेषं नमस्करोति–

'श्रीमते वर्धमानाय नमो'' इत्यादि।

इस उद्धरण से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

–जाप्य मंत्र–

1. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यध्वनिस्वामिने श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीगौतमस्वामिने नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूत–स्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।

श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से)

श्रीगौतम स्वामी विरचित **प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी ग्रंथ** में श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने संस्कृत टीका में अनेक स्थानों पर श्री गौतमस्वामी का नाम लिया है उनके प्रमाण इस ग्रंथ में देखिए। यह ग्रंथ वीरसंवत् 2473 (सन् 1947) में श्री 108 चारित्रचक्रवर्ती–आचार्य–शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था से प्रकाशित है।

(1)

श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित टीकयाऽलङ्कृता

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम्।।1।।

श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मङ्गलार्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्करोति–

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गौष्पदायते।।1।।

टीका–नमो नमस्करोऽस्तु। कस्मै ? वर्धमानाय अन्तिमतीर्थंकरदेवाय (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 1)

(2)

ये रात्रौ दिवसे पथि प्रयततां दोषा यतीनां कृतोऽ–
प्रयायाताः प्रलये तु हेतुरमलस्तेषामयं दर्शितः।।
श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः।
युव्यक्तः सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्ज्ञातः प्रभाचन्द्रतः।।

।।इति–श्रीगौतमस्वामी–विरचित–दैवसिकादि–प्रतिक्रमणायाष्टीका श्रीमत्प्रभाचन्द्र–पण्डितेन कृतेति मंगलमहा।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शांतिसागर–दिगंबरजैन–जिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः प्रथमो ग्रंथः समाप्तः।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 87–88)3)

(3)

बृहत्प्रतिक्रमणम्

दोषा दैवसिकप्रतिक्रमणतो नश्यन्ति ये नो नृणां
तन्नाशार्थमिमां ब्रवीति गणभृच्छ्रीगौतमो निर्मलाम्।
सूक्ष्मस्थूलसमस्तदोषहननीं सर्वात्मशुद्धिप्रदां
यस्मान्नास्ति बृहत्प्रतिक्रमणतस्तन्नाशहेतुः परः।।1।।

श्री गौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकणार्थं बहुत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्द्यर्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्कुर्वन्नाह **णमो जिणाण**मित्यादि। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 89)

(4)

सुधम्मे इत्यादि **श्रीगौतमस्वामी**–इष्टोपयोगसंबोधेनेन भव्यान्संबोधयन् **सुधम्मे** इत्याद्याह। **आउस्संतो।** आयुष्मन्तो भव्या मे मया सुदं श्रुतम्। इह भरतक्षेत्रे खलु स्फुटं **भयवदा** भगवताऽहिंसादीनि व्रतानि **सम्मं धम्मोति** सम्यग्धर्म इति–उवदेसिदाणि उपदिष्टानि। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 97)

(5)

कायं व्युत्सृजामि त्यजामि तत्रोदासीनो भवामि। कथं भूतं कायं ? **पावकम्मं।** पापकर्म यस्मात् पापाय वा कर्म व्यापारो यस्य।। **दुच्चरियं।।** दुष्टं दुर्गतिप्रापकं चरितं यस्य।

यत्पापं प्रचुरं प्रदुष्टमनसा जीवैः पुरोपार्जितं।
तत्सद्यः प्रलयं प्रयाति निखिलं तेषां प्रतिक्रामतां।।
मत्वेदं गणभृत्प्रतिक्रमणया तन्नाशमासूक्तवान्।
व्याख्याता तदियं प्रभेंदुमुनिना सद्धीधनैर्भाव्यतां।।

।।इति–श्रीगौतमस्वामि–विरचित–बृहत्प्रतिक्रमणायाष्टीका श्रीमत्प्रभाचंद–पंडितेन कृतेति।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शांतिसागर–दिगंबरजैनजिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः द्वितीयो ग्रंथः समाप्तः।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 152)

(6)

आलोचना

पंचाचारविशोधनार्थममलामालोचनामुक्त्वा–
नष्टम्यादिदिनावधिर्गणनया श्रीगौतमो मादृशं।

स्पष्टार्थैः प्रवरैः प्रसन्नवचनैः सर्वप्रबोधप्रदै–
स्तां व्याख्यातुमशेष–तोऽमलवपुः प्रारभ्यते प्रक्रमः।।1।।

श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य पंचाचारगोचरस्यातीचारस्य दिनगणनया विशुद्ध्यर्थमालोचनालक्षणमुपायमुप–दर्शयन्नाहठच्छामीत्यादि।। **भंते।।** भगवन् इच्छामि।। किं कर्तुं ? **आलोचेदुं।।** आलोचयितुं।। आलोचनां विशुद्धिं कर्तुं।। क्व ? **अट्ठमियम्हि।।** आष्टमिके। अष्टम्यामष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनायां भवो ज्ञानाचाराद्यतीचार आष्टमिकः। तस्मिन्।। **अट्ठमियमालोचेदुमिति।।** पाठे त्वष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 153)

(7)

सम्मत्तमरणं। सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं।। **होउ मज्झं।।** भवतु मम।। **पंडितमरणं।।** भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरण–भेदात् त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं।।** वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु।। **दुक्खक्खओ।।** दुःखाना चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ।।** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो।।** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं।।** शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति।।** जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निः शेषशुद्धिप्रदं।
व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।
तद्येन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।
स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

पेटलापट्के श्रीचंद्रप्रभदेवपादानामग्रे **श्रीगौतमस्वामीकृत**–प्रतिक्रमणात्रयस्य टीकात्रयं–श्री प्रभाचंद्रपंडितेन कृतमिति।।1।।

।।श्री।।श्री।।श्री।। ।।श्रीपार्श्वनाथाय नमः।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्यशांतिसागर–दिगंम्बर–जैनजिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमण–ग्रंथत्रय्याः तृतीयो ग्रंथः समाप्त।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. 194, 195)

चैत्यभक्ति के विषय में उद्गार

पं. श्री लालाराम जी के

पूज्यवर आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज ने अपने मुनिसंघ सहित वीर निर्वाण संवत् 2457 का चातुर्मास देहली नगर में किया था। उनके पुण्यमय दर्शन करने के लिए मैं भी देहली गया था।

उस संघ में मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी भी हैं। इन समस्त मुनिराजों को इन भक्तियों से सदा काम पड़ता रहता है कितनी ही भक्तियाँ तो प्रतिदिन बोलनी पड़ती हैं तथा कितनी ही विशेष-विशेष समय पर पढ़ी जाती हैं। इन भक्तियों के पढ़ते समय यदि इनका अर्थज्ञान हो, तो फिर और भी विशेष आनन्द आता है। इसीलिए इनके अर्थ जानने की मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी की प्रबल इच्छा थी। मुनियों की इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ सब धार्मिक ही होती हैं इसीलिए इन इच्छाओं की पूर्ति करना विशेष पुण्य का कारण समझा जाता है। यही समझकर मैंने वहाँ से आकर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह हिन्दी टीका लिखी है।

इन भक्तियों में अधिकतर भक्तियाँ आचार्यश्री 108 पूज्यपाद स्वामी की लिखी हुई है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कितने प्रौढ़ और प्राचीन उद्भट विद्वान् आचार्य थे, यह बात प्रायः समाज के समस्त जनसाधारण तक जानते हैं।

इन भक्तियों की एक संस्कृत टीका है जो आचार्य श्री प्रभाचंद्र स्वामी की बनाई हुई है। उस टीका में चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि–

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी ''जयति भगवान्'' इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर 'जयति भगवान्' इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम अग्निभूत वायुभूत

1. दशभक्त्यादि संग्रह प्रस्तावना से।

नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थं द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम, अग्निभूति, वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने ''जयति भगवान्'' इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतम स्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग श्रुतज्ञान की रचना की।

इन दोनों कथनों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इन भक्तियों में से चैत्यभक्ति भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य गणधर भगवान् गौतम स्वामी की बनाई हुई है। इससे इसकी प्राचीनता और प्रौढ़ प्रमाणता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इस स्तुति में कृत्रिम–अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। जिसमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी आदि सब देवों के चैत्यालयों का तथा मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि यह मूर्ति पूजा जैनियों ने ब्राह्मणों से नहीं ली है किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है। जो लोग मूर्तिपूजा आदि को ब्राह्मणों से ली हुई बतलाते हैं, उनको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साथ में जो लोग जैन भूगोल को अप्रमाण और टीलों पर बैठकर लिखे हुए बतलाते हैं, उन्हें भी अपने नेत्र खोल लेने चाहिए।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है, अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं। बहुत से लोग कहा करते हैं कि ''वर्तमान के समस्त शास्त्र पंचमकाल के बने हुए हैं इसलिए उनमें कहा हुआ विषय भगवान

महावीर स्वामी का कहा हुआ नहीं माना जा सकता'' ऐसे लोगों को भी अनर्गल बोलना बंद कर कुछ दिन तक जानकार विद्वानों से अध्ययन करना चाहिए।

यह हिन्दी टीका मैंने संस्कृत टीका के आधार से की है। तथापि प्रमादवश या अज्ञानवश इसमें जो कुछ स्खलन हुआ हो, उसे विद्वानों को सुधार कर बांच लेना चाहिए।

-लालाराम जैन शास्त्री, मोरेना (म.प्र.)
फाल्गुन शु. 12, वी. नि. सं. 2458

मनरूपी वृक्ष को मोहरूपी जल से मत सींचो

णिल्लूरह मणवच्छो खंडह साहाउ रायदोसा जे।
अहलो करेइ पच्छा मा सिंचह मोहसलिलेण।।68।।
(श्री देवसेन सूरि)

यहाँ मन को वृक्ष की उपमा दी है। जिस प्रकार वृक्ष में दो बड़ी शाखाएं होती हैं उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष में रागद्वेषरूपी दो बड़ी शाखाएं हैं। जिस प्रकार वृक्ष की बड़ी शाखाओं से उपशाखाएं निकलकर वृक्ष को विस्तृत करती हैं उसी प्रकार रागद्वेषरूपी दो बड़ी शाखाओं से विषयेच्छा रूप अनेक उपशाखाएं निकलकर मनरूपी वृक्ष को विस्तृत करती हैं। जिस प्रकार वृक्ष में फल निकलते हैं उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष में भी संकल्प-विकल्परूप अनेक फल लगते हैं और जिस प्रकार वृक्ष को जल से सींचकर हरा-भरा किया जाता है उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष को मोहरूपी जल से हरा-भरा रखा जाता है। आचार्य क्षपक को उपदेश देते हैं कि-हे क्षपक! तू इस मनरूपी वृक्ष को निर्मूल कर दे, इसकी उपशाखाएं काटकर इसे विस्तार से रहित कर दे, यही नहीं इनकी रागद्वेषरूपी शाखाओं को काट डाल, ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे अब इसमें संकल्प-विकल्परूपी फल न लगें तथा इसे अब मोहरूपी जल से सींचना बंद कर दे। ऐसा करने से यह मनरूपी वृक्ष स्वयं उखड़ जायेगा।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो ''नव पदार्थ'', ''द्वादशतप'', ''बंध के कारण'', ''श्रावक के बारह व्रत'' व पच्चीस भावनाएँ वर्णित हैं। इन्हीं के अनुसार षट्खण्डागम ग्रंथ व श्री कुंदकुंददेव द्वारा विरचित समयसार, प्रवचनसार, मूलाचार आदि ग्रंथों में समानता है। आगे के ''तत्त्वार्थसूत्र'' आदि ग्रंथों से अन्तर आया है। उसे यहाँ दिखाते हैं—

1. नव पदार्थ—

श्री गौतमस्वामी कथित नवपदार्थ—

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले[1]।

इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।

षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक 13 में नवपदार्थ—

''जीवाजीवपुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।''

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता।

यहाँ इन्हें नौ पदार्थ कहा है।

समयसार में श्री कुंदकुंददेव ने कहा है–

(15 ज.) **भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।**
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं[3]।।13 अ.।।

1. क्रियाकलाप, मुनिचर्या, पृ. 292। 2. षट्खण्डागम धवला टीका पु. 13, पृ. 64।
3. समयसार पूर्वार्ध, पृ. 63, गा. (अ. 13, ज. 15)।

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।13।।

पद्यानुवाद-शेर छंद-

(15 ज.) भूतार्थ से जाने गए जो जीवाजीव हैं।
जो पुण्यपाप आस्रव संवर भी तत्त्व हैं।।
निर्जर व बंध मोक्ष ये सम्यक्त्व कहे हैं।
व्यवहार से ये मुक्ति के साधक भी हुए हैं।।12 अ.।।

उत्थानिका— शुद्धनय से जानना ही सम्यक्त्व है, ऐसा सूत्रकार कहते हैं–

अन्वयार्थ— (भूतार्थेन अभिगताः जीवाजीवौ च पुण्यपापं च आस्रवसंवर-निर्जराः बंधः च मोक्षः सम्यक्त्वं) भूतार्थ से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व ही सम्यक्त्व हैं।।12।।

आत्मख्याति—अमूनि हि जीवादीनि नवतत्त्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं संपद्यंत एवामीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोनुभूतेरात्मख्याति-लक्षणायाः संपद्यमानत्वात्।

आत्मख्याति— ये जीव आदि नवतत्त्व भूतार्थनय से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हो जाते हैं, क्योंकि तीर्थ प्रवृत्ति के लिए अभूतार्थनय से कहे गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष लक्षण वाले ये नवतत्त्व हैं। उन तत्त्वों में एकत्व को प्रकट करने वाले, भूतार्थनय से एकत्व को प्राप्त कर शुद्धनय से व्यवस्थापित जो आत्मा है उसकी आत्मख्याति लक्षण वाली अनुभूति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की ही अनुभूति होती है।

भूमिका—अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञाय विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावं निजस्वरूपं भावयति। विस्तररुचिः पुनर्नवभिरधिकारैः समयसारं ज्ञात्वा पश्याद्भावनां करोति। तद्यथा–विस्तररुचिशिष्यं प्रति जीवादिनवपदार्थाधिकारैः समयसारव्याख्यानं क्रियते।

उत्थानिका—तत्रादौ नवपदार्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षण-निर्विकल्पसामायिकस्थितानां यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शनमनुभवनमवलोकनमुपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारित्रा-विनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं भण्यते। तदेव च गुणगुण्यभेदरूपनिश्चनयेन शुद्धात्मस्वरूपं भवतीत्येका पातनिका। अथवा नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाताः संतस्त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वाद् व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्तं भवंति, निश्चयनयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्ररूपयति—

भूदत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर-बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।15।।

भूतार्थेनाऽभिगता जीवाऽजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रव-संवर-निर्जरा-बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।15।।

तात्पर्यवृत्ति—भूदत्थेण भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन अभिगदा अभिगता निर्णीता निश्चिता ज्ञाताः संतः। के ते। जीवाजीवा य पुण्यपावं च आसवसंवर-णिज्जरबंधो मोक्खो य जीवाजीव-पुण्यपापास्रवसंवर-निर्जराबंधमोक्षस्वरूपा नवपदार्थाः सम्मत्तं त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्सम्यक्त्वं भवंति। निश्चयेन परिणाम एव सम्यक्त्वमिति।[1]

भूमिका—कोई आसन्न भव्य जीव इस पीठिका के व्याख्यानमात्र से ही हेय-उपादेय तत्त्वों को जानकर विशुद्धज्ञानदर्शन स्वभाव वाले अपने स्वरूप की भावना करता है उसका अनुभव करता है किन्तु पुनः विस्तार–रुचिवाला कोई शिष्य आगे कहे जाने वाले नव अधिकारों के द्वारा समयसारस्वरूप-अपनी शुद्ध आत्मा को समझकर अनंतर उसकी भावना करता है। उसी विस्तार-रुचि वाले शिष्य के प्रति जीवादि नव पदार्थ के नव अधिकारों से इस समयसार का व्याख्यान किया जा रहा है।

उत्थानिका—उनमें सर्वप्रथम नवपदार्थ के अधिकाररूप गाथा में आर्त, रौद्रध्यान के परित्याग लक्षण, निर्विकल्पसामायिक में जो स्थित हैं, ऐसे

1. समयसार पूर्वार्ध, पृ. 77 से 79 संस्कृत व हिन्दी।

मुनियों के जो शुद्ध आत्मा के स्वरूप का दर्शन है, अनुभवन है, अवलोकन है, उपलब्धि है, संवित्ति है, प्रतीति है, ख्याति है और अनुभूति है वही निश्चयनय से निश्चयचारित्र के साथ अविनाभाव संबंध रखने वाला ऐसा निश्चयसम्यक्त्व या वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है और वही सम्यक्त्व गुण-गुणी में अभेद को कहने वाले ऐसे निश्चयनय से शुद्धात्मा का स्वरूप है। इस प्रकार से यह एक पातनिका अर्थात् उत्थानिका हुई।

अथवा भूतार्थ से जाने गये जो जीवादि नव पदार्थ हैं वे ही अभेदोपचार से सम्यक्त्व का विषय होने से व्यवहारसम्यक्त्व के निमित्त होते हैं, किन्तु निश्चयनय से अपनी आत्मा का शुद्ध परिणाम ही सम्यक्त्व है, इस प्रकार से यह दूसरी उत्थानिका हुई। इस तरह इन दोनों उत्थानिकाओं को मन में रखकर आगे का सूत्र प्ररूपित करते हैं–

अन्वयार्थ—(भूयत्थेण अभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसव-संवरणिज्जर बंधो य मोक्खो सम्मत्तं) भूतार्थ से—अशुद्ध निश्चयनय से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व हैं।।15।।

तात्पर्यवृत्ति—भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय या शुद्धनय, इस शुद्धनय के द्वारा निर्णय किये गये—निश्चित किये गये—जाने गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव पदार्थ हैं, वे ही अभेद के उपचार के द्वारा सम्यक्त्व होते हैं, क्योंकि ये नव पदार्थ ही सम्यक्त्व के विषय हैं और सम्यक्त्व के लिए कारण हैं। निश्चयनय से आत्मा का श्रद्धानरूप परिणाम ही सम्यक्त्व है।

इसी गाथा को श्री कुंदकुंद स्वामी ने अपने मूलाचार ग्रंथ में लिया है–

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं[1]**।।203।।**

1. मूलाचार पूर्वार्ध, पृ. 168, गाथा 203, टीका संस्कृत 168 से 169, संस्कृत, हिन्दी।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अनुसार देखें—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं[1]।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति।।621।।
जीवदुगं उत्तत्थं जीवा पुण्णा हु सम्मगुण सहिदा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति।।622।।

जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वयं आस्रवः संवरो निर्जरा बन्धो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवन्ति। पदार्थशब्दः सर्वत्र सम्बन्धनीयः,-जीवपदार्थः इत्यादिः।।621।।

जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्व जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु नियमेन।।622।।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में इनका क्रम बदला है। सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में देखिए— **तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्।** अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह— **जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्[2]।।4।।**

तत्र चेतनालक्षणो जीवः। सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते। तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः। शुभाशुभकर्मागमद्वाररूपं आस्रवः। आत्म-कर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः। आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः। एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा। कृत्स्नकर्म वियोगलक्षणो मोक्षः। एषां प्रपञ्च उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थ त्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमास्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वातदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावात्तत्प्रत्यनीक-प्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदन्तिके निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्।

इह पुण्यपापग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'नवपदार्थाः' इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्। न कर्त्तव्यम् आस्रवे बंधे चान्तर्भावात्।

जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अब तत्त्व कौन-कौन हैं, इस बात को बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं—

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।।4।।

1. गोम्मटसार जीवकाण्ड, पृ. 861 से गाथा 621, 622, जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, पृ. 862, ज्ञानपीठ से प्रकाशित। 2. सर्वार्थसिद्धी, पृ. 10, 11, 12।

इनमें से जीव का लक्षण चेतना है जो ज्ञानादिक के भेद से अनेक प्रकार की है। जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है। शुभ और अशुभ कर्मों के आने के द्वाररूप आस्रव है। आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना बंध है। आस्रव का रोकना संवर है। कर्मों का एकदेश अलग होना निर्जरा है और सब कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है। सब फल जीव को मिलता है, अतः सूत्र के प्रारंभ में जीव का ग्रहण किया है। अजीव-जीव का उपकारी है यह दिखलाने के लिए जीव के बाद अजीव का कथन किया है। आस्रव जीव और अजीव दोनों को विषय करता है अतः इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण किया है। बंध आस्रवपूर्वक होता है, इसलिए आस्रव के बाद बंध का कथन किया है। संवृत जीव के बंध नहीं होता, अतः संवर बंध का उलटा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिए बंध के बाद संवर का कथन किया है। संवर के होने पर निर्जरा होती है, इसलिए संवर के पास निर्जरा कही है। मोक्ष अन्त में प्राप्त होता है, इसलिए उसका अन्त में कथन किया है।

तत्त्वार्थराजवार्तिक के कतिपय अंश—

त्रिकालविषयजीवनानुभवनात् जीवः[1]।।7।। दशसु प्राणेषु यथोपात्त-प्राणापर्यायेण त्रिषु कालेषु जीवनानुभवनात् 'जीवति, अजीवीत्, जीविष्यति' इति वा जीव। तथा सति सिद्धानामपि जीवत्वं सिद्धं जीवितपूर्वत्वात्। संप्रति न जीवन्ति सिद्धाः, भूतपूर्वगत्या जीवत्वमेषाम् इत्यौपचारिकत्वं स्यात्, मुख्यं चेष्यतेः, नैष दोषः, भावप्राणज्ञानदर्शनानुभवनात् सांप्रतिकमपि जीवत्वमस्ति। अथवा रूढिशब्दोऽयम्। रूढौ च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थेवेति कदाचित्कं जीवनमपेक्ष्य सर्वदा वर्तते गोशब्दवत्।

तद्विपर्ययोऽजीवः।।8।। यस्य जीवनमुक्तलक्षणं नास्त्यसौ तद्विपर्ययाद् अजीव इत्युच्यते।

आस्रवत्यनेन आस्रवणमात्रं वा आस्रवः।।9।। येन कर्मास्रवति यद्वा आस्रवणमात्रं वा स आस्रवः।

बध्यतेऽनेन बंधनमात्रं वा बन्धः।।10।। बध्यते येन अस्वतन्त्रीक्रियते येन, अस्वतन्त्रीकरणमात्रं वा बन्धः।

1. तत्त्वार्थराजवार्तिक पृ. 68 से 69 एवं 73 से 74।

संव्रियतेऽनेन संवरणमात्रं वा संवरः।।11।। येन संव्रियते येन संरुध्यते, संरोधनमात्रं वा संवरः।

निर्जीर्यते यया निर्जरणमात्रं वा निर्जरा।।12।। निर्जीर्यते निरस्यते यया, निरसनमात्रं वा निर्जरा।

मोक्ष्यते येन मोक्षणमात्रं वा मोक्षः।।13।। मोक्ष्यते अस्यते येन असनमात्रं वा मोक्षः।

द्रव्यसंग्रह में देखिए—

जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई[1]।।2।।

—शंभुछंद—(पद्यानुवाद)—

जो जीता है सो जीव कहा, उपयोगमयी वह होता है।
मूर्ती विरहित कर्ता स्वदेह, परिमाण कहा औ भोक्ता है।।
संसारी है औ सिद्ध कहा, स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशाली।
इन नौ अधिकारों से वर्णित, है जीव द्रव्य गुणमणिमाली।।2।।

अर्थ—प्रत्येक प्राणी जीव है, उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेह परिमाण रहने वाला है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है। ये जीव के नव विशेष लक्षण हैं।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु।।15।।

पुद्गल औ धर्म, अधर्म तथा, आकाश काल ये हैं अजीव।
इन पाँचों में पुद्गल मूर्तिक, रूपादि गुणों से युत सदीव।।
बाकी के चार अमूर्तिक हैं, स्पर्श वर्ण रस गंध रहित।
चैतन्य प्राण से शून्य अतः, ये द्रव्य अचेतन ही हैं नित।।15।।

अर्थ—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है ऐसा जानो। इनमें से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, क्योंकि वह रूप, रस, गंध और स्पर्श गुण वाला है, बाकी शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं।

1. द्रव्यसंग्रह, गाथा 2, गाथा 15, गाथा 28।

आसव बंधणसंवर-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीव-विसेसा, तेवि समासेण पभणामो।।28।।

हैं जीव अजीव इन्हीं दो के, सब भेद विशेष कहे जाते।
वे आस्रव बंध तथा संवर, निर्जरा मोक्ष हैं कहलाते।।
ये सात तत्त्व हो जाते हैं, इनमें जब मिलते पुण्य पाप।
तब नौ पदार्थ होते इनको, संक्षेप विधि से कहूँ आज।।28।।

अर्थ—जीव और अजीव के विशेष भेदरूप आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष होते हैं। ये पुण्य और पाप से सहित भी हैं। इन सबको हम संक्षेप से कहते हैं।

2. द्वादश तप
(पाक्षिक प्रतिक्रमण से)

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो, पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[1]।।3।।

(प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी से)

।।तत्थ।। तत्र तयोर्द्वयोर्मध्ये।। बाहिरो।। बाह्यस्तप—आचारः।। अणसणं।। अशनं भोजनं। तदभावोऽनशनमुपवासः।। आमोदरियं।। अवमोदर्यमर्धभुक्त्यादि।। वित्तिपरिसंखा।। वृत्तिपरिसंख्यानं गृहग्रासादिकं परिगण्य वृत्तिः।। रसपरिच्चाओ।। रसपरित्यागो घृतादिरसपरित्यागः।। सरीरपरिच्चाओ।। आतपनादिकायक्लेशः।। विवित्तसयणासणं च।। विविक्ते स्त्रीपशुषंढवर्जिते प्रदेशे शय्यासनमिति। एवमुक्तषट्प्रकारो बाह्यस्तप—आचारः।। अथ 'अब्भंतर' इत्याह—तत्थेत्यादि।। तत्र तयोर्द्वयोर्मध्येऽभ्यंतर-स्तप—आचारः—पायच्छित्तं।। आगमोक्तविधिना दोषनिर्हरणं प्रायश्चित्तं। तन्नवविधमालोचन-प्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-परिहारोपस्थापना—

1. पाक्षिक प्रतिक्रमण, मुनिचर्या, पृ. 202।

भेदात् ।। विणओ।। विनयो गुणाधिकेषु नीचैवृत्तिः स चतुर्विधो ज्ञानदर्शन-चारित्रोपचारभेदात्-वेज्जा-(आ) वच्चं।। वैयावृत्त्यं गुणवत्सु दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना कायचेष्टया द्रव्यांतरेण वा तदपनयनं। तद्दशविधमाचार्यो–पाध्यायतपस्विशैक्षग्लान-गणकुलसंघसाधुमनोज्ञ–विषयभेदात्।। सज्झाओ।। शोभन आध्यायः पाठः स्वाध्यायः। स पंचविधो, वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्राय-धर्मोपदेशभेदात् ।। झाणं।। ध्यानं चिंतानिरोधलक्षणं। तच्चतुर्विधमार्तरौद्र-धर्म्यशुक्लभेदात्। तत्र धर्म्यशुक्लरूपं ध्यानमिह गृह्यते; नार्तरौद्ररूपं, तस्य दुर्गतिहेतुत्वेन तपोरूपतानुपपत्तेः।। विउस्सग्गो चेदि।। व्युत्सर्जनं। व्युत्सर्गश्च बाह्याभ्यंतरपरिग्रहत्याग इति। एवमुक्तप्रकारेणाभ्यंतर–बाह्यं समुदितं।। बारसविहं।। द्वादशप्रकारं।। तवोकम्मं।। तप–आचारः।। ण कदं।। न कृतं नानुष्ठितं। मया किंविशिष्टेन? णिसण्णेण।। परीषहादिभिः पीडितेन। किंतु।। पडिक्कंतं।। निषण्णेन मया प्रतिक्रांतं परित्यक्तं।। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे।। तस्य द्वादशविधतप–आचारपरिहापनस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या विफलता मे भवतु।।[1]

–(पद्यानुवाद)–

छह अभ्यंतर छः बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।3।।

तप आचार बारह प्रकार का है–छह बाह्य तपाचार और छह आभ्यन्तर तपाचार। उनमें से बाह्य तपाचार के अनशन (उपवास), अवमौदर्य (अर्धोदर या अर्धभुक्ति आदि), वृत्तिपरिसंख्यान, घृतदुग्ध आदि रसों का त्याग, शरीरपरित्याग आतापनादि द्वारा कायक्लेश और विविक्त शय्यासन ये छह भेद हैं तथा आभ्यन्तर तपाचार के प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग छह भेद हैं। उक्त बारह प्रकार का तप कर्म परिषह आदिकों

1. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी, पृ. 77-78।

से पीड़ित होकर मैंने नहीं किया किन्तु परीषह आदि से पीड़ित होकर छोड़ दिया। उस बारह प्रकार के तपाचार के परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत में विफलता होवे या मेरा दुष्कृत विफल होवे।।3।।

(षट्खण्डागम ग्रन्थ से)

जं तं तवोकम्मं णामे[1]**।।25।।**

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मं णाम।।26।।

तं तवोकम्मं बाहिरमब्भंतरेण सह बारसविहं। को तवो णाम ? तिण्णं रयणाण-माविब्भावट्ठ-मिच्छाणिरोहो। तत्थ चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरेसु एसणपरिच्चाओ अणेसणं णाम तवो। किमेसणं ? असण-पाण-खादिय-सादियं। किमट्ठमेसो कीरदे ? पाणिंदियसंजमट्ठं, भुत्तीए उहयासंजमअवि-णाभावदंसणादो। ण च चउव्विहआहारपरिच्चागो चेव अणेसणं, रागादीहि सह तच्चागस्स अणेसणभावब्भुवगमादो। अत्र श्लोकः—

अप्रवृत्तस्य दोषेभ्यस्सहवासो गुणैः सह। उपवासस्स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम् ।।6।।

अब तपःकर्म का अधिकार है।।25।।

उसके अर्थ का खुलासा करते हैं—

वह आभ्यन्तर और बाह्य के भेद से बारह प्रकार का है। वह सब तपःकर्म है।।26।।

वह तपःकर्म बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का है।

शंका—तप किसे कहते हैं ?

समाधान—तीन रत्नों को प्रकट करने के लिए इच्छानिरोध को तप कहते हैं।

उसमें चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें एषण का ग्रहण करना तथा एक पक्ष, एक मास, एक ऋतु, एक अयन अथवा एक वर्ष तक एषण का त्याग करना अनेषण नाम का तप है।

शंका—एषण किसे कहते हैं ?

1. षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक–13 पृ. 54।

समाधान—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, इनका नाम एषण है।

शंका—यह किसलिए किया जाता है ?

समाधान—यह प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयम की सिद्धि के लिए किया जाता है क्योंकि भोजन के साथ दोनों प्रकार के असंयम का अविनाभाव देखा जाता है।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि चारों प्रकार के आहार का त्याग ही अनेषण कहलाता है क्योंकि रागादिकों के त्याग के साथ ही उन चारों के त्याग को अनेषणरूप से स्वीकार किया है। इस विषय में एक श्लोक है—

उपवास में प्रवृत्ति नहीं करने वाले जीव को अनेक दोष प्राप्त होते हैं और उपवास करने वाले को अनेक गुण, ऐसा यहाँ जानना चाहिए। शरीर के शोषण करने को उपवास नहीं कहते ।।6।।

भावार्थ—इस षट्खण्डागम धवला टीका पु. 13 में पृ. 54 से 88 तक विस्तार से यही गौतमस्वामी प्रणीत क्रम को लिया है। जैसे कि—

(1) अनशन, (2) अवमौदर्य, (3) वृत्तपरिसंख्यान, (4) रसपरित्याग, (5) कायक्लेश और (6) विविक्तशयनासन ये 6 बाह्य तप हैं।

(1) प्रायश्चित्त, (2) विनय, (3) वैयावृत्य, (4) स्वाध्याय, (5) ध्यान और (6) कायोत्सर्ग ये 6 अभ्यंतर तप हैं।

मूलाचार में भी बाह्य तप में विविक्तशयनासन को छठे तप में व अभ्यंतर तप में व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग को छठे तप में लिया है। यथा—

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।
कायस्स वि परितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं[1]।।346।।

गाथार्थ—अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, कायक्लेश और विविक्तशयनासन ये छः बाह्य तप हैं।।346।।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो।।360।।

गाथार्थ—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, ये अभ्यन्तर तप हैं।।360।।

1. मूलाचार पूर्वार्ध–पृ. 283, 292। 2. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9, सूत्र 19-20।

पुनश्च तत्त्वार्थसूत्र में क्रम बदला है।यथा—

अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः।।19।।

अर्थ—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त–शय्यासन और कायक्लेश, ये छह बहिरंग तप हैं।।19।।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।20।।

अर्थ—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, ये उत्तर यानी अन्तरंग तप हैं।।20।।

3. बंध के कारण

बंध प्रत्यय अर्थात् बंध के कारण चार माने हैं।

श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में अनेक बार–

चउण्णं पच्चयाणं[1]। ''चउसु पच्चएसु[2]।।''

टीकाकारों ने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ऐसे नाम दिये हैं।

षट्खण्डागम में तो अनेक स्थलों पर ये प्रत्यय चार ही माने हैं। षट्खण्डागम में तृतीय खण्ड का नाम ही ''बंधस्वामित्व-विचय'' है। धवला पु. 8 में देखिए–

'मिच्छत्तासंजमकसाय-जोगा इदि एदे चत्तारि मूलपच्चया।[3]

अर्थात् मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार मूल प्रत्यय हैं।

इनके भेद 57 हैं। मिथ्यात्व के 5, अविरति के 12, कषाय के 25 एवं योग के 15 भेद होते हैं।

विशेष—यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि–जो बन्ध के कारण हैं वे ही कर्म के आस्रव के कारण हैं। अतः 'आस्रव त्रिभंगी' छोटा सा ग्रंथ है, इसमें भी इन्हीं चार भेद के 57 भेद करके गुणस्थान और मार्गणाओं में आस्रव, अनास्रव व आस्रव व्युच्छित्ति को अच्छी तरह समझाया गया है।

समयसार ग्रंथ में श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है–

सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंध कत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य बोद्धव्वा[4]।।109।।

1. मुनिचर्या पृ. 25। 2. मुनिचर्या पृ. 135-169। 3. धवला पुस्तक-8 पृ. 19-20।
4. समयसार पृ. 393।

अर्थ—सामान्य से बंध के करने वाले प्रत्यय—कारण चार हैं।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। ऐसा जानना चाहिये।

मूलाचार में भी चार प्रत्यय माने हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।

मिच्छत्तं अविरमणं कषाय जोगा य आसवा होंति।
अरिहंत वुत्तअत्थेसु विमोहो होइ मिच्छत्तं।।236।।[1]

आगे श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने बंध के पांच कारण माने हैं। देखिये–तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 8 का प्रथम सूत्र–

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाययोगा बंधहेतवः[2]**।।1।।**

सूत्रार्थ–**मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं।।1।।**

४. पच्चीस भावना

श्री गौतमगणधर स्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में पच्चीस भावनाओं के नाम दिए हैं—

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे[3]**।।1।।**
मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा- समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।2।।
अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि - भास - कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।3।।
अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।4।।
इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।5।।
सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।6।।

1. मूलाचार, पृ. 200। 2. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 8 सूत्र–1। 3. मुनिचर्या पृ. 283-284।

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।1।।
मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।2।।
क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।3।।
अदेहनं - यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह- गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।4।।
स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।5।।
सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।6।।

भावार्थ—उक्त और अनुक्त अर्थ का चिन्तन करना चूलिका है। उसका अर्थ कहता हूँ। उसमें पच्चीस भावनाएँ हैं, जो कि एक एक महाव्रत में पाँच-पाँच स्वीकार की गई हैं।।1।।[1]

मन से गुप्त, वचन से गुप्त, गमन करते समय काय से प्राणियों की पीड़ा के परिहार में तत्पर तथा एषणा समिति से संयुक्त होता हूँ। अन्यत्र भावना कही गई हैं यहाँ उन भावनाओं से सहित व्यक्ति कहा गया है। जो कि अभिन्न होने से भावना ही है, क्योंकि भावनाओं से युक्त व्यक्ति के ही अहिंसा व्रत निर्मल होता है।।2।।

क्रोध से रहित, लोभ से रहित, भय से वर्जित, हास्य से वर्जित और आगमानुकूल बोलने में कुशल होऊं। ये पांच सत्य महाव्रत की भावनाएँ हैं। इनसे युक्त के सत्यमहाव्रत निर्मल होता है।।3।।

तृतीय अचौर्य व्रत को आश्रित मैं पांच भावनाओं में तत्पर होता हूँ। वे भावनाएं ये हैं अदेहन अर्थात् कर्मवश जो मैंने देह का उपार्जन किया है, वह

1. यतिप्रतिक्रमण पृ. 150-151 (हिन्दी अनुवादक-पं. श्री पन्नालाल जी सोनी सिद्धान्त शास्त्री, ब्यावर)

ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नहीं है। ऐसी भावना भाता हूँ। यहां पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान में अदेहन बन गया है। देह में ही अशुचित्व, अनित्यत्व आदि भावना है उसको भी भाता हूँ। परिग्रह में अवग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना भाता हूँ। भक्त, पान आदि चतुर्विध आहार में सन्तुष्ट अर्थात् गृद्धि-रहित होता हूँ। इन भावनाओं को भाने वाले के तीसरा महाव्रत निर्मल होता है।।4।।

मैथुन से विरति लक्षण चतुर्थ ब्रह्मव्रत को मैं आश्रित हुआ हूँ। मैं स्त्री कथा, स्त्री संसर्ग, स्त्रियों के साथ हास्य विनोद, स्त्रियों के साथ क्रीडन और उनके मुखादि अंगों का रागभाव से अवलोकन इन सब ब्रह्मचर्य के विघातकों में चूँकि नियम से स्थित हूँ इसलिए निवृत्त होता हूँ। इन भावनाओं से चतुर्थ व्रत निर्मल होता है।।5।।

परिग्रह से विरति लक्षण पंचम व्रताश्रित मैं दासी, दास आदि सचित्त द्रव्य में और धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्य में तथा वस्त्र, आभरण आदि बाह्य द्रव्य में और ज्ञानावरणादि आभ्यन्तर द्रव्य में तथा गृह क्षेत्र आदि अन्य सब परिग्रह से विरत होता हूँ। इस प्रकार की पाँच भावनाओं को भाने वाले के परिग्रह विरति व्रत निर्मल ठहरता है। (ये पाँचों व्रत प्रतिज्ञारूप हैं, क्योंकि अभिसन्धि-पूर्वक किया हुआ नियम व्रत होता है ऐसा कहा गया है)।।6।।

तत्त्वार्थसूत्र में 25 भावना का वर्णन निम्न प्रकार हैं—

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[1]।।1।।

अर्थ—हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी) अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

व्रत के कितने भेद हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती।।2।।

अर्थ—व्रत के दो भेद हैं—अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पाँच पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

व्रतों की स्थिरता के लिए क्या करना चाहिए ?

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।।3।।

1. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय–7 पृ. 83-84 सूत्र 1 से 8 तक।

अर्थ–उन व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक की पाँच-पाँच भावनाएं हैं। किसी वस्तु का बार-बार चिन्तन करना सो भावना है।

अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ कौन सी हैं?

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।।4।।

अर्थ–वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईयासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान भोजन (सूर्य के प्रकाश में देखकर खाना, पीना) ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ क्या हैं ?

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।।5।।

अर्थ–क्रोध, लोभ, भय, हास्य का त्याग करना और अनुवीचि भाषण (शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना) ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

अचौर्य व्रत की भावनाएँ कौन सी हैं ?

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च।।6।।

अर्थ–शून्यागार अर्थात् पर्वत, गुफा, नदी, तट आदि स्थानों में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् राजा आदि के द्वारा छुड़वाए हुए स्वामित्वहीन स्थानों में रहना, परोपरोधाकरण अर्थात् अपने स्थान में ठहरने से किसी को न रोकना, भैक्ष्यशुद्धि अर्थात् शास्त्रानुसार भिक्षा की शुद्धि रखना और सहधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनाएँ हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च।।7।।

अर्थ—स्त्री राग की कथा-कहानी सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पहले भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, कामवर्धक गरिष्ट भोजन का त्याग और अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

परिग्रह त्याग व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।।8।।

अर्थ—पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (इष्ट) विषय में राग तथा अमनोज्ञ (अनिष्ट) विषयों में द्वेष का त्याग करना, ये पाँच परिग्रहत्याग व्रत की भावनाएँ हैं।

विशेष—यहाँ श्री गौतमस्वामी की भावनाओं से अचौर्यव्रत व अपरिग्रह व्रत की भावनाओं में अन्तर है।

५. श्रावक के १२ व्रत

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं साावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं[1] चेदि।

–(पद्यानुवाद)–

हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहां मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।

1. 'तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि' इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है।

ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।
तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।
त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।
पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।[1]

चारित्र पाहुड़ में श्रावक के 12 व्रत—

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि[2]।।24।।

दिग्विदिग्माणं प्रथमं अनर्थदण्डस्य वर्जनं द्वितीयम्।
भोगोपभोगपरिमाणं इदमेव गुणव्रतानि त्रीणि।।24।।

गाथार्थ—दिशाओं और विदिशाओं का प्रमाण करना पहला गुणव्रत है। अनर्थदण्ड का त्याग करना दूसरा गुणव्रत है और भोग तथा उपभोग का परिमाण करना तीसरा गुणव्रत है। इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।।24।।

1. मुनिचर्या पृ. 291-292।
2. अष्टपाहुड ग्रंथ में 85-86 पृ. पर चारित्र पाहुड़ में गाथा–24-25।

सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।।25।।

सामायिकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधो भणितः।
तृतीयमतिथि-पूज्यं चतुर्थं सल्लेखना अन्ते।।25।।

गाथार्थ—पहला सामायिक, दूसरा प्रोषध, तीसरा अतिथि-पूज्य और चौथा मरणकाल में सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं।।25।।

विशेषार्थ—सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है। इसमें चैत्यभक्ति, पञ्चपरमेष्ठी भक्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए। व्रत प्रतिमा में जो सामायिक होता है वह दिन में एक बार, दो बार अथवा तीन बार होता है। परन्तु सामायिक प्रतिमा में जो सामायिक कहा गया है, वह नियम से तीन बार करना चाहिए।

भावसंग्रह ग्रंथ में श्रावक के 12 व्रत—

दिसिविदिसि पच्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो।
भोओपभोयसंखा ए एह गुणव्वया तिण्णि[1]।।354।।

दिग्विदिक् प्रत्याख्यानं अनर्थदण्डानां भवति परिहारः।
भोगोपभोगे संख्या एतानि हि गुणव्रतानि त्रीणि।।354।।

अर्थ—दिशा-विदिशाओं में आने जाने का नियम धारण कर उनकी सीमा नियत कर शेष दिशा विदिशा में आने जाने त्याग करना, पाँचों प्रकार के अनर्थ दंडों का त्याग करना, भोगोपभोगपदार्थों की संख्या नियत कर शेष भोगोपभोग पदार्थों का त्याग कर देना ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं।
अति हीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं।।355।।

देवान् स्तौति त्रिकाले पर्वणि पर्वणि सुप्रोषधोपवासः।
अतिथीनां संविभागः मरणान्ते करोति सल्लेखनाम।।355।।

अर्थ—प्रातःकाल, मध्यान्ह काल, संध्याकाल इन तीनों समय में पंचपरमेष्ठी की स्तुति करना, प्रत्येक महीने की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करना, प्रतिदिन अतिथियों को दान देना और सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। इस प्रकार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत

1. भावसंग्रह पृ 227-228, गाथा-354, 355।

और चार शिक्षाव्रत ये बारह अणुव्रत कहलाते हैं। देशव्रती श्रावक को आठ मूलगुण और ये बारह व्रत अवश्य धारण करने चाहिए। इन बारह व्रतों को उत्तर गुण भी कहते हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में बारह व्रत—

व्रत किसे कहते हैं ?

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[1]।।1।।

अर्थ—हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी) अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

व्रत के कितने भेद हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती।।2।।

अर्थ—व्रत के दो भेद हैं—अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पांच पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

अणुव्रती के और भी कोई व्रत होते हैं ?

दिग्देशानर्थदण्डविरति-सामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथिसंविभागव्रत-सम्पन्नश्च।।21।।

अर्थ—अणुव्रती को दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत (3 गुणव्रतों) और सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग-परिभोग परिमाण और अतिथिसंविभागव्रत (ये चार शिक्षाव्रत) और पालने होते हैं।

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता।।22।।

अर्थ—अव्रती को मरण के समय सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए। समतापूर्वक काय और कषायों को कृश करना सल्लेखना कहलाता है।

विशेषार्थ—पांच अणुव्रत सर्वत्र समान हैं। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत श्रीगौतमस्वामी, श्रीकुंदकुंददेव व भावसंग्रह के कर्ता श्री देवसेन आचार्य के एक सदृश-समान है। श्री उमास्वामी आचार्य के तत्त्वार्थसूत्र में अंतर है और आगे अनेक श्रावकाचारों में इन सातों में कहीं समानता है कहीं-कहीं अंतर है। इसे-'जिनागम रहस्य' ग्रंथ में मैंने संकलित किया है।

1. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 7 सूत्र 1,2,21,22।

(6) गाथाएँ या सूत्र अपरिवर्तनीय हैं

कोई-कोई गाथाएँ श्री गौतम स्वामी आदि महान् गणधर देव व आचार्यों के मुखकमल से निर्गत हैं उनकी विभक्ति आदि का संशोधन नहीं करना चाहिये। जैसे कि–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

यह श्री गौतमस्वामी के मुख से निर्गत गाथासूत्र आज बदलकर ऐसा कर रहे हैं कि–"**देवा वि तं णमंस्संति**[1] यह अनुचित है क्योंकि टीकाकार श्रीप्रभाचंद्राचार्य तक यह गाथा ऐसी ही चली आ रही थी उन्होंने इसकी टीका इस प्रकार की है यथा—

"इदानीं धर्मादीनां मलगालनादिहेतुतया परममंगलत्वं प्ररूपयन्नाह। **धम्मो** इत्यादि। धर्म उक्तलक्षणः। **मंगलं।** मलं पापं गालयति विध्वंसयति वा मंगलम्। मंगं वा परमसुखं लात्यादत्त इति मंगलम्। **उक्किट्ठं।** उत्कृष्टमनुपचरितं परमम्। न केवलं धर्म एव मंगलमपि **तु अहिंसा संजमो तवो** अहिंसा संयमस्तपश्च। न केवलं मलगालनहेतुरेवायमपि तु पूजादिहेतुरपि। यतः **देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो** देवा अपि तस्य प्रणमंति यस्य धर्मे सदा मनः।।[2]"

ऐसे ही पाक्षिक और अष्टमी के प्रतिक्रमण में दण्डक सूत्रों का ऐसा क्रम है। यह दण्डकसूत्र श्री गौतमस्वामी द्वारा विरचित हैं। इन्हें बदल देना अनुचित है। इन दण्डक सूत्रों का क्रम टीकाकारों तक इसी प्रकार रहा है और ऐसे ही क्रम रखकर उन्होंने टीका की है। यथा—

"णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु,

१. श्रमणचर्या–पृ. १६४। २. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी–पृ. ८०।

चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि अइक्कमो वदिक्कम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।"[1]

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

नव ब्रह्मचर्य गुप्ती चउ संज्ञा चार हि आस्रव कारण हैं।
दो आर्तरौद्र संक्लेश भाव त्रय अप्रशस्तसंक्लेश कहें।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चरित्र चउ उपसर्गा।
चारित्र पाँच छह जीवकाय छह आवश्यक किरिया उक्ता।।
भय सात आठ शुद्धी दश विध हैं श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान।
दश मुंडन बारह संयम बाइस परिषह भावना बीस पांच।।
पच्चीस क्रिया अठरह हजार हैं शील व गुण चौरासि लाख।
अठबीस मूलगुण बहु उत्तरगुण इन सबमें कीना विघात।।
इन आठ दिनों में अष्टमि में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अरू।
जो अनाचार आभोग अनाभोग उन सबका प्रतिक्रमण करूं।।
प्रतिक्रमण सुकरते हुए मेरा सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीरमरण जिससे नहिं होवे पुनः मरण।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मम जिनगुणसंपति होवे।।

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी यही क्रम लिया है[1]–

[2]**णवसु** इत्यादि। **णवसु बंभचेरगुत्तीसु।**। नवप्रकारासु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु। कथं पुनस्तासां नवप्रकारतेति चेत्, उच्यते–तिर्यङ्मनुष्यदेवस्त्रीणां प्रत्येकं मनोवचनकायैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। अथवा स्त्रीसामान्यस्य मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतविशेषैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। तस्य च गुप्तयो रक्षणानि पालनानि नवप्रकाराणि भवंतीति नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः। **चउसु सण्णासु**।।

१. मुनिचर्या पृ. १७०–१७१। २. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १८६ से १९४ तक।

चतसृषु संज्ञास्वाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणासु।। **चउसु पच्चएसु**।। चतुर्षु प्रत्ययेषु कर्मबंधकारणेषु मिथ्यादर्शनाविरतिकषाययोगलक्षणेषु। प्रमादस्य पंचमस्य तत्कारणस्य सद्भावात्कथं चत्वारः प्रत्यया इति नाशंकनीयं, तस्याविरतावंतर्भावात्।। **दोसु अट्टरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु**।। द्वयोरार्तरौद्रलक्षणसंश्लेष-परिणामयोः।। **तिसु अप्पसत्थसंकिलेस—परिणामेसु**।। त्रिषु मायामिथ्यानिदानस्वरूपेष्वप्रशस्तेषु पापोपार्जनहेतुभूतेषु संक्लेशपरिणामेषु।। **मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तेसु।**। मिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शनमिथ्याचारित्रेषु। अथवा मिथ्यादर्शन-ज्ञानचारित्राण्येव संक्लेशपरिणामाः, संक्लिष्टात्मनामेव तत्प्रादुर्भावात्।। **चउसु उवसग्गेसु**।। चतुर्षूपसर्गेषु देवमनुष्यतिर्यगचेतन-कृतोपसर्गलक्षणेषु।। **पंचसु चरित्तेसु**।। सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातलक्षणेषु।। **छसु आवासएसु**।। प्रागेव व्याख्यातरूपेषु।। **सत्तसु भएसु**।। "इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणा कस्स।। भय—"मित्येतल्लक्षणलक्षितेषु।। **अट्ठसु सुद्धीसु**।। "मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतं।।" इत्येवं रूपासु।। **दससु समणधम्मेसु**।। दशप्रकारेषु श्रमणधर्मेषु। श्रमणानां मुनीनां धर्माः श्रमणधर्मास्तेषूत्तम-क्षमामार्दवार्जवसत्यशौच-संयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणेषु।। **दससु धम्मज्झाणेसु**।। दशप्रकारेषु धर्म्यध्यानेष्वपायविचयोपायविचयविपाकविचयविराग-विचयलोकविचयभवविचयजीवविचयाज्ञाविचयसंस्थानविचयसंसारविचयलक्षणेषु। विचयो हि परीक्षा। सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो, दूरमेवापेता इति चिंतनमपायविचयः। अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो, जीवस्य कथमपायः स्यादितिचिंतनमपायविचयः।।1।। उपायविचयो दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिंतनं।।2।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकाल भवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः।।3।। संसारदेहविषयेषु दुःखहेतुत्वानित्यत्वचिंतनं विरागविचयः।।4।। ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेनानाद्यनिधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिंतनं लोकविचयः।।5।। चतुर्गतिनारकतिर्यङ्मानुषदेवनिकायभवचिंतनं भवविचयः।।6।। संति जीवा उपयोगस्वभावा अनादिनिधना मुक्तेतररूपा इत्यादि जीवस्वरूपचिंतनं जीवविचयः।।7।। सर्वज्ञागमं

प्रमाणीकृत्यात्यंतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचयः। सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा हेतुसामर्थ्यात्।।8।। अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्रजमृदंगाद्याकारचिंतनं संस्थानविचयः।।9। स्वोपात्तकर्मविपाकवशादात्मनो भवांतरावाप्तिः संसारः। तच्चिंतनं संसारविचयः।।10।। **दससु मुंडेसु**।। मुंडनं निरोधनं मुंडः। स दशप्रकारो भवति—पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा। मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समये।।" इति वचनात्।। **बारसेसु संजमेसु**।। द्वादशप्रकारो हि संयमः षड्विध इंद्रियसंयमः षड्विधः प्राणिसंयमश्चेति। तत्रेंद्रियसंयमः षड्विधः, पंचानामिंद्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात्स्वविषये गच्छतामेतेषां नियंत्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विधः पंचानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्।। **बावीसाए परीसहेसु**।। द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मक्षयार्थं ये परिषह्यंते ते परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्या—रतिस्त्रीचर्या—निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणाः। तेषु।। **पणवीसाए भावनासु।**। पंचविंशतिसंख्यासु भावनासु। व्रतानां स्थैर्यार्थं हि भाव्यंत इति भावनाः पंचविंशतिः। तथाहि—हिंसाविरतिव्रतस्थैर्यार्थं तावद्वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकितपानभोजनानि पंच, तथाऽनृतविरतिव्रत-स्थैर्यार्थं क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच, स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच, अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच, परिग्रहविरतिस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंचेति।। **पणवीसाए किरियासु**।। पंचविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियंत इति क्रियाः शुभाशुभकर्मादानहेतवो व्यापाराः पंचविंशतिः। तथाहि—चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया (प्रायोगिकी क्रिया)। संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया। ईर्यापथनिमित्ता ईर्यापथक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया।

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १८६ से १९४ तक। ४. श्रमणचर्या—पृ. २०१—२०२।

हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितंत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिंद्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पंच क्रियाः।। रागाद्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्प्रष्टव्यसचेतनानुबंधः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपशुषंढसंपातिदेशेंऽतर्मलोत्सर्गकरणं समंतानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथोक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथा-प्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षक्रिया। एताः पंचक्रियाः।। छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन चारंभे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारंभक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचना मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा 'साधु करोषीति' सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशाद-निवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एताः पंचविंशतिक्रियाः।। **अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु।।** अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिगुणशतसहस्राणि लक्षाः परमागमे प्रतिपादितस्वरूपाः। तेषु।। **मूलगुणेसु**।। पंचमहाव्रतपंचसमितिपंचेंद्रिय-निरोधादिलक्षणेष्वष्टाविंशतिसंख्येषु।। **उत्तरगुणेसु।**। वृक्षमूलातापनाद्यनेक-प्रकारेष्वेतेषु।। प्राक्प्रतिपादितस्वरूपेषु नवब्रह्मचर्यगुप्त्यादिषूत्तरगुणपर्यंतेषु यः कश्चिदतिक्रमादिदोष आष्टमिकाद्यनुष्ठाने जातस्तं प्रतिक्रमातीति संबंधः। किंलक्षणोऽयमतिक्रमादिरिति चेत्, उच्यते-"अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः। तथातिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानां"।।1।। अथवा।। **अदिक्कमो**।। कुतश्चिद्-व्यासंगाच्चित्तसंक्लेशाद्वाऽऽगमोक्तानुष्ठान-कालादधिककालआवश्यकादि-क्रियाकरणमतिक्रमः। **वदिक्कमो**।। विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्त-क्रियाकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं।। **अइचारो**।। आवश्यकादिक्रिया-करणालसत्वं।। **अणाचारो**।। व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वा।। **आभोगो**।। कापोतलेश्यावशात्पूजा-

महत्त्वाभिलाषेणातिप्रकटानुष्ठानकरणं।। **अणाभोगो**।। लज्जादिवशाल्लोकानामप्रकटानुष्ठानकरणं। अयमतिक्रमादिदोषो नवब्रह्मचर्यादिगुप्त्यादिगोचरः क्व जात इत्याह-**अट्ठमियम्हि** इत्यादि।। अष्टम्यामष्टदिनावच्छिन्ने काले भवमाष्टमिकमनुष्ठानं। तस्मिन्।। **पक्खियम्हि।।** पक्षे भवं पाक्षिकमनुष्ठानं। तस्मिन्।। **चाउम्मासियम्हि**।। चतुर्षु मासेषु भवं चातुर्मासिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। **सांवच्छरियम्हि**।। संवत्सरे भवं सांवत्सरिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। एतस्मिन्नाष्टमिकाद्यनुष्ठाने षडावश्यकादिगोचरोऽति-क्रमादिर्यो दोषो जातस्तं प्रतिक्रमाम्युक्तालोचनाद्वारेण निराकरोमि।। **मए पडिक्कंतं**।। अतिक्रमादिदूषणं मया प्रतिक्रांतं शोधितं यदा भवति तदा।। **सम्मत्तमरणं**।। सम्यक्त्वयुक्तस्या-परित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं।। **होउ मज्झं**।। भवतु मम।। **पंडियमरणं**।। भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरणभेदात् त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं**।। वीर्ययुक्त-स्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु।। **दुक्खक्खओ**।। दुःखानां चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ**।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो।।** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं**।। शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति**।। जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं। व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।

तद्येन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

नव प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्ति में, चार संज्ञाओं में, कर्मबंध के कारण चार मिथ्यात्वादि प्रत्ययों में, दो आर्त्तरौद्रसंक्लेशपरिणामों में, माया मिथ्या निदानरूप तीन अप्रशस्त परिणामों में, चार उपसर्गों में, पाँच सामायिक चारित्रों में, छह जीव निकायों में, छह आवश्यकों में, सात भयों में, आठ शुद्धियों में, नव ब्रह्मचर्य गुप्तियों में, दश श्रमण धर्मों में, दश धर्मध्यानों में, दश मुंडों में, बारह संयमों में, बाइस परिषहों में, पच्चीस भावनाओं में, पच्चीस क्रियाओं में, अठारह हजार शीलों में, चौरासी लाख गुणों में, मूलगुणों में और उत्तर गुणों

में इत्यादि विधि निषेध स्वरूप यत्याचारों में आष्टमिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक अनुष्ठानों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग और अनाभोग ये जो दोष हुआ है, उसका प्रतिक्रमण–निराकरण करता हूँ। मेरे दोष दूर किये उसको मेरा सम्यक्त्वमरण, समाधिमरण, पंडितमरण, वीर्यमरण, दुःखक्षय, कर्मक्षय, बोधिलाभ, सुगतिगमन और जिनेन्द्रगुणों की प्राप्ति हो।[1]

अब श्रमणचर्या पुस्तक में परिवर्तित पाठ देखिए—

दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्प-सत्थसंकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, **चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु,** पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, **अट्ठसु मएसु,** अट्ठसु सुद्धीसु, **णवसु बंभचेर-गुत्तीसु,** दससु समण-धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मंडेसु, **दसविहेसु, भत्तिसु,** बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारह-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु अट्ठमियम्मि अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो **जादो** तं पडिक्कमामि। **तस्स** मए पडिक्कंतं, मे सम्मत्त-मरणं, पंडिय-मरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं।[2]

यहाँ तात्पर्य यही है कि परिवर्तित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

नोट—श्रमणचर्या में पाठ आगे, पीछे किया गया है और थोड़ा बढ़ाया गया है। चार ज्ञानधारी श्रीगौतमस्वामी की कृति में यह परिवर्तन अनुचित कार्य है। अतः पाठकगण ध्यान दें–प्राचीन एवं शुद्ध पाठ ही पढ़ें। परिवर्तित पाठ न पढ़े।

१. यतिप्रतिक्रमण, पृ. ९६। २. श्रमणचर्या पृ. २०१–२०२।

श्रीगौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन–परिवर्धन उचित नहीं है।

(1) करोम्यहं—आजकल कुछ साधु-साध्वियां **''कुर्वेऽहं''** क्रिया को पढ़ने लगे हैं किंतु मुझे यह संशोधन नहीं जँचा है अतः मैंने यहाँ **''करोम्यहं''** ऐसा आचार्य प्रणीत प्राचीनपाठ ही सर्वत्र रखा है।

सिद्धांतचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्य ने आचारसार ग्रंथ में **''करोम्यहं''** पाठ ही लिया है। यथा-**''क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहं[1]।''**

अनगार धर्मामृत में पाक्षिक प्रतिक्रमण के लक्षण की स्वोपज्ञटीका में **''करोम्यहं''** क्रिया का प्रयोग पंद्रह बार आया है। उदाहरण के लिये देखिये–

''सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां..... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं[2]।'' इत्यादि।

क्रियाकलाप में देववंदना, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिकप्रतिक्रमण एवं अन्य क्रियाओं की प्रयोगविधि में **''करोम्यहं''** पाठ ही उपलब्ध है।

चारित्रसार ग्रंथ में भी-**''चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य** .....इत्यादि पाठों में **''करोमि''** क्रिया ही है। ऐसा ही सामायिक भाष्य ग्रंथ एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी **''करोमि, करोम्यहं''** पाठ ही उपलब्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर सभी ग्रंथों में इस परस्मैपदी **''करोमि''** क्रिया ही उपलब्ध हो रही है पुनः इसे बदलकर **''कुर्वेऽहं''** पाठ क्यों रखा गया? यह विचारणीय है।

(2) ''णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं' पाठ सामायिक दण्डक में है यहाँ 'तवाणं' पाठ बढ़ाया है सो उचित नहीं है देखिये प्रमाण–

''णाणाणमित्यादि–ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणानामानन्त्य–संभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतम्।''

(क्रियाकलाप पृ. 146)

इससे स्पष्ट है कि **'तवाणं'** पद मूल में नहीं है। टीकाकारों ने भी नहीं माना है।

(3) ऐसे **''कीरंतं पि ण समणुमणामि''** पाठ के स्थान पर–

''अण्णं कंरंतं पि ण समणुमणामि'' पाठ श्री गौतमस्वामी की कृति में सुधारना सर्वथा अनुचित है।

१. आचारसार पृ. १९१। २. अनगार धर्मामृत मूल संस्कृत अ. ९ पृ. ६५७।

(4) इसी प्रकार–

''वंदामि रिट्ठणेमिं'' पाठ ही थोस्सामि स्तव में सर्वत्र मान्य है।

श्रमणचर्या के प्रथम संस्करण में–

'वंदाम्यरिट्ठणेमिं' किया है। पुनः द्वितीय संस्करण में **''वंदे अरिट्ठणेमिं''** किया है।

इस परिवर्तन पाठ को पढ़ना उचित नहीं है।

(5) सामायिक भाष्य में चैत्यभक्ति की अंचलिका की टीका में देखिए–

''अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि।'' (सामायिक भाष्य पृ. 175)

टीकाकार ने भी प्राचीन पाठ ही लिया **'अंचेमि'** आदि। अतः–

श्रमणचर्या में पृ. 102 पर–

''अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि।'' पाठ सुधारना कहाँ तक उचित है।

(6) इसी तरह **''सल्लेहणामरणं''** के अनंतर **''तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि''** पाठ हटाकर **''इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि''** बढ़ाना उचित नहीं है। मूल पाठ जो क्रियाकलाप' आदि ग्रंथों में चला आ रहा है। उसे ही पढ़ना चाहिये।

(7) **'जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साावियाओ वा खुड्डय खुड्डियाओ वा अट्ठदहभवणवासिय-वाणविंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तउवरिम-अण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।'**

जो श्रावक या श्राविका अथवा क्षुल्लक या क्षुल्लिका इन उपर्युक्त बारह व्रतों को या ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करते हैं वे अठारह स्थान को, भवनवासी, वान व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों को छोड़कर ऊपर के स्वर्गों में से किसी भी स्वर्ग में महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

सन् 1958 में एक विद्वान ने कहा कि **'अट्ठदह'** पाठ का अर्थ समझ में नहीं आता है अतः इसके स्थान में **'णट्ठदेहा'** पाठ हो सकता है।'

कुछ पुस्तकों में उन्होंने ऐसा संशोधन करा दिया किन्तु उनसे कहा गया कि–पंडित जी! श्रावक-श्राविका और क्षुल्लक-क्षुल्लिका **'नष्टदेहाः'**–देहरहित तो होते नहीं हैं। अतः यह संशोधन मुझे संगत नहीं लगता है। चर्चा के प्रसंग में ऐसी बात आई—

'अठारह स्थान ऐसे ढूंढने चाहिये जहाँ व्रती नहीं जाता हो तथा उन अठारह स्थानों में ये भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान की देवियाँ नहीं आनी चाहिए चूँकि इन्हें

पृथक् से लिया है। तभी उमास्वामी श्रावकाचार के दो श्लोक स्मृतिपथ में आ गये, वे ये हैं—

सम्यक्त्वसंयुतः प्राणी, मिथ्यावासेन जायते।
द्वादशेषु च तिर्यक्षु, नारकेषु नपुँसके।।88।।
स्त्रीत्वे च दुष्कृताल्पायु-दारिद्र्यादिकवर्जितः।
भवनत्रिषु षट्भूषु, तद्देवीषु न जायते।।89।।

सम्यक्त्व से सहित जीव मिथ्यात्व के निम्नस्थानों में नहीं जाता है—

1. पृथ्वीकायिक 2. जलकायिक 3. अग्निकायिक 4. वायुकायिक 5. वनस्पति–कायिक 6. दो इंद्रिय 7. तीन इंद्रिय 8.चार इंद्रिय 9. निगोद 10. असंज्ञीपंचेन्द्रिय 11. कुभोगभूमि और 12. म्लेच्छखंड, मिथ्यात्व के इन बारह स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा 13. तिर्यचों में 14. नरकों में 15. नपुंसक में और 16. स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता है।

पुनः पापी, अल्पायु, दारिद्रादि से वर्जित रहता है। यह सम्यग्दृष्टी भवनत्रिकों में, प्रथम नरक से अतिरिक्त छह नरकभूमियों में व स्वर्ग की देवियों में भी नहीं जाता है।

चर्चा में यह बात और आई कि यहाँ प्रतिक्रमण में तो व्रतिक श्रावकों के लिए कथन है अतः व्रतीजन तो सुभोगभूमि और मनुष्य पर्याय में भी नहीं जाते हैं क्योंकि गाथा है कि—

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। (गोम्मटसार कर्मकांड)

अणुव्रती और महाव्रती तो देवायु के सिवाय अन्य किसी आयु का बंध ही नहीं कर सकता है। इसलिये उपर्युक्त 16 स्थानों में, 17. सुभोगभूमि और 18. मनुष्य इन दो स्थानों को मिला देने से अठारह स्थान हो जाते हैं। व्रतिक व क्षुल्लक-क्षुल्लिका इनमें नहीं जाते हैं।

ये अठारह स्थान आ. श्रीशिवसागरजी महाराज को भी बहुत ही संगत प्रतीत हुये थे। तब विद्वान द्वारा संशोधित पाठ 'णट्ठदेहा' हटा दिया गया था।

उसके बाद वह चर्चा वहीं समाप्त हो गई थी।

कुछ दिन पूर्व श्रमणचर्या में **'अट्ठदह'** पाठ को उलट कर **'दहअट्ठ'** पाठ लिया गया जिसका अर्थ यह निकाला गया-'दश प्रकार के भवनवासी और आठ प्रकार के वानव्यंतर। पुनः 'श्रमणचर्या' में छपा है-**'दह-अट्ठ-पंच'** जिसे भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों के भेदरूप से माना गया।

जो भी हो मेरी विचारधारा तो यही है कि यदि कुछ पाठ संशोधित भी करना है तो पुराने विद्वानों के समान उस मूलपाठ को न हटाकर टिप्पण में 'संभावित है' ऐसा लिखकर उसे देना चाहिए।

ऐसे ही एक पाठ परिवर्तन और है जो कि अतीव विचारणीय है–मूल पाठ है– **'से अभिमदजीवाजीवउवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले।'**

अब इसे बदल कर ऐसा पाठ रखा गया है—**'से अभिमदजीवाजीवउवलद्ध-पुण्णपावआसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।'**

मूलपाठ में नवतत्त्वों का क्रम यह था-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

परिवर्तित पाठ का क्रम ऐसा हो गया है जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

विचार करने से यह समझ में आता है कि—इस मूलपाठ के क्रम के अनुसार ही कुंदकुंददेव ने समयसार में गाथा रखी है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।13।।

और इसी गाथा के क्रम के अनुसार ही श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में अधिकार विभक्त किये हैं। जीवाजीवाधिकार के बाद पुण्य-पापाधिकार है पुनः आस्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार लेकर तब बंध अधिकार है इसके बाद मोक्ष अधिकार है।

(8)	**क्रियाकलाप**	**पृ.**	**श्रमणचर्या**	**पृ.**
	देवा वि तस्स पणमंति	**66**	**देवा वि तं णमंसंति**	**40**

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में टीकाकार ने यही क्रियाकलाप वाला पाठ रखकर इसी की टीका की है। जैसे–

''देवा वि तस्स पणमंति-देवा अपि तस्य प्रणमंति।'' इस प्रकार अनेक संशोधन वर्तमान में किये जा रहे हैं किन्तु विचार करने की बात है कि इन टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य तक तो यह प्राचीन पाठ ही प्रमाणभूत माना गया है और श्रीटीकाकार भी प्राकृत-संस्कृत व्याकरण व छंद शास्त्रादि के ज्ञाता अवश्य थे फिर भी उन्होंने यह पाठ नहीं बदला है। आजकल ऐसे ही अनेक संशोधन हुये हैं जो कि हमें इष्ट नहीं हैं।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१)	(२)
(१) **क्रियाकलाप** (**प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२**) (**सन् १९३६**)	प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ७०)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. ८९)
(२) **धर्मध्यान दीपक** (**प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३**) (**सन् १९५७**)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. २००)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. २२४)
(३) **नित्यभक्ति पाठ** (**प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८**) (**सन् १९६२**)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् (पृ. २११)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २३०)
(४) **यतिक्रियामंजरी** (**प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८**) (**सन् १९६२**)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ११९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४१)
(५) **मुनिचर्या** (**प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१**) (**सन् १९९५**)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। (पृ. २४६)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८)
(६) **श्रमणचर्या–प्रथम संस्करण** (**प्र.-वी. नि. सं. २५०६**) (**सन् १९८०**)	कुर्वेऽहं (पृ. ९१, ९३)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १०)
(७) **श्रमणचर्या–द्वितीय संख्या** (**प्रकाशन-वी. सं. २५१६**) (**सन् १९९०**)	कुर्वेऽहम् (पृ. ९५)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि (पृ. ९७)
(८) **विमलभक्ति संग्रह** (**प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६**) (**सन् १९८९-९०**)	कुर्वेऽहं (पृ. ३४७)	**चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं** (पृ. ३७४)
(९) **श्रमणाचार** (**प्रकाशन-वी. सं. २५१५**) (**सन् १९८९**)	कुर्वेऽहं (पृ. ११४)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४५)
(१०) **सुज्ञान श्रमणचर्या** (**प्रकाशन-वी. सं. २५३८**) (**सन् २०१२**)	कुर्वेऽहं (पृ. २६२) करोम्यहं (पृ. २६७)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २६८)
(११) **दिनचर्या** (**संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष'**)	करोम्यहम् (पृ. ७९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८०)

नोट–पाठकगण ध्यान दें–जिन पुस्तकों में श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो परिवर्तित, परिवर्धित पाठ हैं चार्ट में उनके नीचे अंडरलाईन हैं, जो अनुचित है अतः आप परिवर्तित एवं परिवर्धित पाठ न पढ़े। शुद्ध, प्राचीन पाठ ही पढ़ें।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(३)	(४)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९०)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. ९०)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २२४)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २२५)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २३०)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २३१)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	कीरतं वि ण समणुमणामि (पृ. १४२)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १४२)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २९८)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १०)
(६) श्रमणचर्या–प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ११)
(७) श्रमणचर्या–द्वितीय संख्या (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९७)	वंदे अरिट्ठणेमिं (पृ. ९८)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ३४८)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ३७५)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. १४६)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २५०)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. २६९)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	कीरंतं पि, ण समणुमणामि (पृ. ८०)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ८१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(५)	(६)	(७)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७४)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. ७८, ११९)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. ८१)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २०३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. २६५)	पोथवं वा कमंडलुं वा (पृ. २१२)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २१३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २२१)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. १७८)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. १३१)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २८२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. ४३२)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २७४)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ९१)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा कमण्डलुं वा (पृ. १३१)
अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि (पृ. १०२)	विउस्सग्गो झाणं चेदि (पृ. १७५, १९६)	पोत्थयं वा पीढं वा कमंडलुं वा (पृ. १११, २००)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ३५६)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३५८)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. ३६३)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२४)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. १३१)
अचेंमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २४८)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. २६०)
अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७२)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. १२०)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा (पृ. ६९)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(८)	(९)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. ८२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ८६)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. २१४)	लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टा-विंशति-मूलगुणाः (पृ. २१९)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु...(पृ. २२२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २२९)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. १३२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः... (पृ. १३७)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. २७८)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २८८)
(६) श्रमणचर्या—प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	दोसु अट्ठ-रुद्द संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ.. (पृ. १३३)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १४३)
(७) श्रमणचर्या—द्वितीय संख्या (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	दोसु अट्ठरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ११२, २०१)	रोधषडावश्यकक्रियालोचादयोऽष्टा-विंशतिमूलगुणाः (पृ. १२०)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. ३६४)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ३६९)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ..... (पृ. १३३)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १३९)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	दोसु अट्ठ-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. २६१)	रोध-षडावश्यकक्रियालोचादयो-ऽष्टाविंशतिमूलगुणाः.... (पृ. २६७)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	दोसु अट्टरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ७१)	रोध-षडावश्यक-क्रिया-लोचादयोऽष्टा-विंशति मूलगुणाः (पृ. ७५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(१०)	(११)	(१२)
पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. ८९)	राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ९३)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ९४)
पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.. (पृ. २२३)	राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २२८)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३०)
पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.... (पृ. २२९)	राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २३४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३५)
पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. १४१)	राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. १४४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. १४६)
पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. २९६)	राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ३०६)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ३१०)
पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १४४)	राईभोयण-वेरमणछट्ठाणि, स-भाववाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)
पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १२१)	राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि, अणुव्वदाणि सभावणाणि (पृ. १२६)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. १२८)
पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. ३७३)	राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि, स-भावणाणि (पृ. ३७९)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. ३८१)
पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. १४४)	राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि स-भावणाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)
पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. २६७)	राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि अणुव्वदाणि (पृ. २७१)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. २७३)
पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. ५५)	राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ८४)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. ८६)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१३)	(१४)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ९५)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९८)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभो–यणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३१)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २३६)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३६)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २४०)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १४७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १५१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण मेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ३१४)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३३४)
(६) श्रमणचर्या–प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
(७) श्रमणचर्या–द्वितीय संख्या (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि, एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १२८) पृ. १३३, १३७, १४२, १४७, १५१ पर भी यही बढ़ाया हुआ पाठ है।	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. १३६)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण–मेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. ३८२)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३९०)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयणमेगभत्तं–पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयणं–अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि ऐगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. २७३)	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. २७९)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयण–मेयभत्तं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमिं (पृ. ८७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(१५)	(१६)	(१७)
दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. ९८)	मणुणामणुणेसु (पृ. ९९)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १०७)
दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. २३६)	मणुणामणुणेसु (पृ. २३८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २४९)
दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. २४०)	मणुणामणुणेसु (पृ. २४२)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २५१)
दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. १५१)	मणुणामणुणेसु (पृ. १५३)	पच्छिम–सल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १६१)
दंतंतर–सोहणमित्तं पि (पृ. ३३४)	मणुणामणुणेसु (पृ. ३४६)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. ३९४)
दंतंतर–सोहणं णिमित्तं, वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिम–सल्लेहणामरणं चेदि। इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. १३६)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १४०)	पच्छिमसल्लेहणामरणं चेदि, इच्छेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १५९)
दंतंतर–सोहणणिमित्तं, वि (पृ. ३९०)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ३९५)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. ४१७)
दंतंतर–सोहणं–णिमित्तं वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
दंतंतर–सोहणणिमित्तं, वि (पृ. २७९)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. २८३)	पच्छिम–सल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. २९९)
दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. ९२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ९३)	पच्छिम–सल्लेहणामरणं से ..... (पृ. १०४)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१८)	(१९)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १०७)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०८)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. २४९)	अट्ठदहभवणवासिय (पृ. २५०)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	आसवसंवर-णिज्जरबंधमोक्खमहि-कुसले... (पृ. २५१)	अट्ठदहभवणवासिय..... (पृ. २५२)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १६४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १६४)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. ३९६)	अट्ठदहभवणवासिय... (पृ. ३९८)
(६) श्रमणचर्या—प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	आसंव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. १९२)	दह-अट्ठ-पंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)
(७) श्रमणचर्या—द्वितीय संख्या (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १५९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय... (पृ. १६०)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. ४१७)	दहअट्ठपंचभवणवासिय.... (पृ. ४१८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	आसवबंध-संवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १९२)	दहअट्ठपंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	आसवबंध-संवरणिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. २९९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. २९९)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	आसवबंधसंवरणिज्जर-मोक्खमहि कुसले (पृ. १०४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(२०)	(२१)	(२२)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १६४)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं (पृ. १११)	इच्छामि भंते! वीरभत्ति-काउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ.... (पृ. ६४)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १९४)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. १९४)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ..... (पृ. १९१)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १८८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १८८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १६८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १६८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. ५०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. ५०)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४६)
देवा वि तं णमंसंति.... (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ....) (पृ. ३५)
देवा वि तं णमस्संति (पृ. १६४)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गोकओ तस्सालोचेउं (पृ. १६५)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं, जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो.... (पृ. ३१)
देवा वि तं णमंसंति (पृ. ३०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचउं. (पृ. ३०)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राईओ (देवसिओ) (पृ. २५)
देवा वि तं णमंसंति (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं..... (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ) (पृ. ३५)
देवा वि तं णमंस्संति (पृ. २८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो, सम्मणाण.... (पृ. २९)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं जो मे (देवसिओ) राईओ (पृ. २५)
देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १०८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणाइचारमालोचेउं सम्मणाण..... (पृ. १०८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(२३)	(२४)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. ८९)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय)... (पृ. ९७)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)		पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय (पृ. २३५)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं (पृ. २२९)	पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय.... (पृ. २३८)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. १४१)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १५०)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं..... (पृ. २९८)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३३२)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं.... (पृ. ५६)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संख्या (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं... (पृ. ५७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १३५)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ३४७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३८८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं.... (पृ. ११५)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. २६७)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. २७८)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ७९)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(२५)	(२६)	(२७)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि-मरणं पंडियमरणं..(पृ. ८८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १०४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १०४)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. २२२)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमं तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि-मरणं पंडियमरणं... (पृ. २२८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४७)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४८)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिकमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. १४०)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १५९)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १५९)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्त-मरणं समाहिमरणं पंडियमरण.... (पृ. २९४)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. ३८२)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ३८४)
आभोगो अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो अणाभोगो जादो, तं पडिक्कमामि। तस्स मए पडिक्कंतं मे सम्मत्तमरणं (पृ. १२०)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. १५५)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. १५५)
आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. ३७२)	बज्झमब्भंतरेषु य (पृ. ४११)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ४१२)
आभोगो, अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो, अणाभोगो, जादो पडिक्क-मामि तस्समए पडिक्कंतं मे सम्मत्त-मरणं (पृ. २६६)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. २९४)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. २९५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. ७८)	बज्झमब्भंतरेसु य। (पृ. १००)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १००)

श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय

आर्यखंड में एक ब्राह्मण नाम का नगर था। वहाँ एक शांडिल्य नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या का नाम स्थंडिला था, वह ब्राह्मणी बहुत ही सुन्दर और सर्व गुणों की खान थी। इस दम्पत्ति के बड़े पुत्र के जन्म के समय ही ज्योतिषी ने कहा था कि यह गौतम समस्त विद्याओं का स्वामी होगा। उसी स्थंडिला ब्राह्मणी ने द्वितीय गार्ग्य पुत्र को जन्म दिया था, वह भी सर्वकला में पारंगत था, इन्हीं ब्राह्मण की दूसरी पत्नी केशरी के पुत्र का नाम भार्गव था। इस प्रकार ये तीनों भाई सर्व वेद-वेदांग के ज्ञाता था। इन तीनों भाइयों के इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नाम भी प्रसिद्ध हैं। वह गौतम ब्राह्मण किसी ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों का उपाध्याय था। ''मैं चौदह महाविद्याओं का पारगामी हूँ, मेरे सिवाय कोई और विद्वान नहीं है।'' ऐसा अभिमानी था।

भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्रगट होकर समवसरण की रचना हो चुकी थी, किन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिर रही थी। 66 दिन व्यतीत हो गये। तभी सौधर्म इन्द्र ने समवसरण में गणधर का अभाव समझकर अपने अवधिज्ञान से ''गौतम'' को इस योग्य जानकर वृद्ध का रूप बनाया और वहाँ गौतमशाला में पहुँचकर कहते हैं-

''मेरे गुरु इस समय ध्यान में होने से मौन हैं अतः मैं आपके पास इस श्लोक का अर्थ समझने आया हूँ।'' गौतम ने विद्या के गर्व से गर्विष्ठ हो पूछा- ''यदि मैं इसका अर्थ बता दूंगा तो तुम क्या दोगे ?'' तब वृद्ध ने कहा-यदि आप इसका अर्थ कर देंगे, तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊंगा और यदि आप अर्थ न बता सके तो इन सब विद्यार्थियों और अपने दोनों भाइयों के साथ आप मेरे गुरु के शिष्य बन जाना।'' महा अभिमानी गौतम ने यह शर्त मंजूर कर ली, क्योंकि वह समझता था कि मेरे से अधिक विद्वान इस भूतल पर कोई है ही नहीं। तब वृद्ध ने यह काव्य पढ़ा-

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायं।।''

तब गौतम ने कुछ देर सोचकर कहा-''अरे ब्राह्मण! तू अपने गुरु के पास ही चल। वहीं मैं इसका अर्थ बताकर तेरे गुरु के साथ वाद-विवाद करूँगा।''

इन्द्र तो चाहता ही यह था, वह वृद्ध वेधषारी इन्द्र गौतम को समवसरण में ले आया।

वहाँ मानस्तंभ को देखते ही गौतम का मान गलित हो गया और उसे सम्यक्त्व प्रगट हो गया। गौतम ने अनेक स्तुति करते हुए भगवान् के चरणों को नमस्कार किया तथा अपने पाँच सौ शिष्यों और दोनों भाइयों के साथ भगवान् के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। अन्तर्मुहूर्त में ही प्रथम गणधर हो गये।

भक्ति मार्ग सबके लिए श्रेयस्कर है

जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
काएण वाचा मणसा विणिच्चं सक्कारए तं सिर पंचमेण।।

जिनके पास मैंने धर्म को प्राप्त किया है उनके निकट मैं विनय का प्रयोग करता हूँ। मन-वचन-काय से शिर झुकाकर पंचांग नमस्कारपूर्वक मैं (गौतम स्वामी) उन वर्धमान स्वामी का सत्कार (नमस्कार) करता हूँ।

और तभी वे श्रावक के लिए कहते हैं कि-

जिणवयणधम्मचेइयपरमेट्ठिजिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामायियं तं खु।।

जिनागम, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और जिनमंदिर इन नवों की (नवदेवताओं की) जो नित्य ही त्रिकाल में वंदना करता है, उसके यह सामायिक प्रतिमा नाम का व्रत होता है।

-श्री गौतम स्वामी

श्री गौतमस्वामी स्तोत्र

रचयित्री—गणिनी ज्ञानमती

अर्हत्प्रभुकथितार्थं, ग्रथितं गणनायकैः।
भक्त्याहं शिरसा नौमि, श्रुतज्ञानमहोदधिम्।।1।।

धर्मतीर्थस्य कर्तारं, महावीरजिनं नुमः।
द्वादशांगस्य कर्तारं, नौमि गौतमस्वामिनम्।।2।।

इंद्रभूति गणीन्द्र! त्वं, वीरस्य प्रथमो भवेः।
सप्तर्द्धीश! चतुर्ज्ञान-धारिन् ! त्वां नौम्यहं मुदा।।3।।

मुहुर्मुहुर्नमामि त्वां, वीरप्रभोर्गणीश्वरम्।
वीरदिव्यध्वनेर्हेतुं, गणाधीशं गणीश्वरम्।।4।।

प्रभोर्दिव्यध्वनिं श्रुत्वा, द्वादशांगविधायिने।
ग्रंथकर्त्रे गणीन्द्राय, नमो गौतमस्वामिने।।5।।

श्रीगणधर स्वामिन्! ते, चैत्यभक्त्यादिभारती।
प्रतिक्रमणसूत्राणि, प्राप्य धन्या वयं भुवि।।6।।

पायं पायं गणाधीश-वाणीं तेऽमृतसदृशीम्।
पुष्टास्तुष्टाश्च तृप्ताश्च, जाताः स्वस्था अपि वयं।।7।।

श्री गौतमगणीन्द्रस्य, वाणी ह्यमृतवर्षिणी।
पूर्णां ज्ञानमतीं कुर्यात् , स्यान्नोऽमृतपदाप्तये।।8।।

श्री गौतमस्वामी स्तोत्र

श्री इन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं, पृथ्वीभवं गौतमगोत्ररत्नं।
स्तुवन्ति देवाः सुरमानवेन्द्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।1।।

श्री वर्धमानात् समवाप्य दीक्षां, मुहूर्तमात्रेण कृतानि येन।
अङ्गानि पूर्वाणि चतुर्दशानि, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।2।।

श्रीवीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मन्त्रं महानन्दसुखाय यस्य।
ध्यायन्त्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।3।।

यस्माभिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णन्ति भिक्षां भ्रमणस्य काले।
मिष्टान्नपानादिभिः पूर्णकामाः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।4।।

अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवन्दनाय।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेम्यः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।5।।

त्रिपञ्चसङ्ख्याशततापसानां, तपः कृशानामपुनर्भवाय।
अक्षीणलब्ध्या परमान्नदाता, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।6।।

शिवं गते भर्तरि वीरनाथे युगप्रधानत्वमिहेव मत्वा।
पट्टाभिषेको विहितः सुरेन्द्रैः स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे।।7।।

श्री गौतमस्याष्टकमादरेण प्रमोदकाले मुनिपुङ्गवा ये।
पठन्ति ते सूरिपदं च देवा-नन्दं लभन्ते नितरां क्रमेण।।8।।

श्री गौतम गणधर चालीसा

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

–दोहा–

वंदूँ वीर जिनेन्द्र को, मन वच तन कर शुद्ध।
उनके गणधर शिष्य को, नमूँ हृदय कर शुद्ध।।1।।
श्री गौतम गणधर हुए, गणनायक मुनिराज।
जिनकी वाणी सुन बने, अन्य बहुत मुनिराज।।2।।
उन गणधर भगवान का, चालीसा सुखकार।
है सम्यक् श्रुतज्ञान का, यह भी इक आधार।।3।।

–चौपाई–

जय हो वीतराग प्रभु वाणी, वीर दिव्यध्वनि जगकल्याणी।।1।।
बने नाथ जब केवलज्ञानी, समवसरण रचना के स्वामी।।2।।
दिव्यध्वनी जब खिरी नहीं थी, इन्द्र के मन तब युक्ति हुई थी।।3।।
सोचा प्रभु को शिष्य चाहिए, गणधर पद के योग्य चाहिए।।4।।
तभी दिव्यध्वनि खिर सकती है, सारी जनता सुन सकती है।।5।।
इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना, एक महाज्ञानी पहचाना।।6।।
सुनो उसी ज्ञानी की गाथा, जो कैसे सम्यक्त्व है पाता।।7।।
मगध देश में ब्राह्मण नगरी, रहते थे वहाँ इक दम्पत्ती।।8।।
था शाण्डिल्य नाम पण्डित का, स्थंडिला नाम पत्नी का।।9।।
गौतम गार्ग्य पुत्रद्वय जनमे, सर्वकला में पारंगत वे।।10।।
दूजी भार्या नाम केशरी, वह भार्गव सुत की जननी थी।।11।।
इस प्रकार त्रय पुत्र को पाकर, थे शाण्डिल्य प्रसन्न गुणाकर।।12।।
इनके तीन नाम थे दूजे, जिनसे तीनों ही प्रसिद्ध थे।।13।।
इन्द्रभूति गौतम को जानो, गार्ग्य को अग्निभूति तुम मानो।।14।।
भार्गव वायुभूति कहलाया, तीनों में था मान समाया।।15।।

पाँच शतक शिष्यों का स्वामी, इन्द्रभूति गौतम जगनामी।।16।।
उनके पास इन्द्र ने जाकर, पूछा एक प्रश्न का उत्तर।।17।।
वृद्ध वेषधारी का प्रश्न सुन, बोल पड़े आकस्मिक गौतम।।18।।
तू मुझको निज गुरू के पास में, ले चल वहीं पर करूँगा वाद मैं।।19।।
इन्द्र को तो यह इन्तजार था, प्रभु ढिग चलने को तैयार था।।20।।
चले इन्द्र के साथ में गौतम, अपने पाँच शतक शिष्यों संग।।21।।
राजगृही विपुलाचल ऊपर, राज रहा था समवसरण प्रभु।।22।।
वहाँ पहुँचते ही गौतम की, सारी मिथ्याभ्रांति हटी थी।।23।।
तत्क्षण सम्यग्दर्शन पाया, वीर प्रभू को शीश नमाया।।24।।
बन गये नग्न दिगम्बर मुनिवर, तत्क्षण बने प्रभू के गणधर।।25।।
हो गये चार ज्ञान के धारी, जय हे भगवन् स्तुती उचारी।।26।।
वीर की दिव्यध्वनि तत्क्षण ही, खिर गई गणधर के मिलते ही।।27।।
इन्द्रभूति गौतम गणधर ने, दिव्यध्वनि हृदयंगम करके।।28।।
द्वादशांग रच दिया शीघ्र ही, उसका ही है अंश आज भी।।29।।
श्रावण कृष्णा एकम तिथि थी, गणधर पद धारण की शुभ थी।।30।।
महावीर शासन का शुभ दिन, कृतयुग का माना है प्रथम दिन।।31।।
ग्रंथ आज उपलब्ध हैं जो भी, प्रभु वाणी के अंश हैं वो भी।।32।।
है साक्षात भी गौतम वाणी, सुनो भव्यजन जगकल्याणी।।33।।
कहें ''सुदं मे आउस्संतो'', तुम भी धारो आयुष्मन्तों।।34।।
दश अध्यायों में विभक्त है, ज्ञान प्राप्ति हेतू सशक्त है।।35।।
गणिनी ज्ञानमती माताजी, गणधरवाणी संग्रहकर्त्री।।36।।
उनने गणधर वर्ष चलाया, जिन आगम का सार बताया।।37।।
सभी भव्यजन पढ़ो पढ़ाओ, गणधर वाणी को अपनाओ।।38।।
गौतम गणधर पूजन कर लो, नाम मंत्र भी उनका जप लो।।39।।
जय जय बोलो प्रभु पद नम लो, सार्थक मानव जीवन कर लो।।40।।

–शंभु छंद–

यह गौतम गणधर चालीसा, चालिस दिन तक नितप्रति पढ़ना।
हे आयुष्मन्तों ! गणधर की, ऋद्धी का फल सार्थक वरना।।
जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख की प्राप्ती करना।
फिर परम्परा से गणधर पद को, पाकर शाश्वत सुख भरना।।1।।
गणिनी माता श्री ज्ञानमती, जी की शिष्या चन्दनामती।
श्री गौतमगणधर गणनायक, की स्तुति में यह रची कृती।।
श्री वीर संवत् पच्चीस शतक, आषाढ़ शुक्ल षष्ठी की तिथी।
प्रभु वीर गर्भकल्याणक दिन, गणधर पद अर्पण किया कृती।।2।।
भगवान वीर मंगलमय हों, गौतम गणधर मंगलकारी।
श्री कुन्दकुन्द आचार्य तथा, जिनधर्म सदा मंगलकारी।।
महावीर प्रभू का जिनशासन, जब तक जग में जयशील रहे।
उन शिष्य प्रभू गौतम स्वामी, की वाणी भी जयशील रहे।।3।।

धर्म एक सर्वश्रेष्ठ समुद्र है

चारुगुणसलिलपउरं संजमउत्तुंगउम्मिसंघायं।
णिम्मलतवपायालं समिदि–महामच्छ–संछण्णं।।
जमणियमदीवपउरं वरगुत्तिगंभीर–सीलमज्जादं।
णिव्वाणरयणणिवहं धम्मसमुद्दं णमंसामि।।

अर्थ–सुन्दर गुणोंरूप जल की प्रचुरता से संयुक्त, संयमरूप उन्नत ऊर्मि समूहों से सहित, निर्मल तपरूप पातालों से परिपूर्ण, समितियों रूपी महामत्स्यों से व्याप्त, यम-नियम–रूप प्रचुर द्वीपों (जलजन्तु विशेषों) से संयुक्त, श्रेष्ठ गुप्तियों एवं गंभीर शीलरूप मर्यादा से सहित और निर्वाणरूप रत्नसमूह से सम्पन्न ऐसे धर्मरूप समुद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

–जम्बूद्वीपपण्णत्ति-आचार्य पद्मनंदि

भजन

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज–जिन्दगी प्यार का गीत है.....

गौतम गणधर की वाणी सुनो,
ज्ञान अमृत के स्वादी बनो।
वीर प्रभु दिव्यध्वनि को सुनो,
अपने आतम में उसको गुनो।।टेक.।।
आज हम सबका यह पुण्य है, पाया धरती पे नर जन्म है।
इसमें जिन भक्ति ही मुख्य है, गुरु की वाणी से शिव सौख्य है।
वीर वाणी का अमृत चखो,
गुरु गौतम के श्रुत को सुनो।। गौतम.।।1।।
आयुष्मन्तों ! सुना मैंने है, ये वचन गणधर स्वामी कहें।
मुनि–श्रावक ये दो धर्म हैं, शक्तिसम इनका पालन करें।।
सुदं मे आउस्संतो सुनो,
श्रुत का चिन्तन करो औ गुनो।।गौतम.।।2।।
गणिनी श्री ज्ञानमती माता ने, गणधर वाणी बताई हमें।
उसको प्रतिदिन पढ़ें हम सभी, ''चंदनामति'' अमर हो कृती।।
वीर प्रभु के चरण में नमो,
गुरु गौतम के भी पद नमो।।गौतम.।।3।।

गीत

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज—सावन का महीना.....

गौतम गणधर वाणी, है द्वादशांग का सार।
गौतम गणधर वर्ष मनाकर, बोलो जय जयकार।।टेक.।।

वीर प्रभू के शिष्य प्रथम, ये गणधर प्रमुख कहाये हैं।
नग्न दिगम्बर मुनि बनकर, मनपर्यय ज्ञान को पाये हैं।।

प्रभु की दिव्यध्वनि सुन, पा गये निजातम सार।
गौतम गणधर वर्ष मनाकर, बोलो जय जयकार।।1।।

राजगृही नगरी में विपुलाचल पर्वत था धन्य हुआ।
श्रावण कृष्णा एकम को जहाँ समवसरण जिनवर का बना।।

राजा श्रेणिक ने तब, प्रभु भक्ती करी अपार।
गौतम गणधर वर्ष मनाकर, बोलो जय जयकार।।2।।

गणिनी ज्ञानमती माताजी की सबको प्रेरणा मिली।
गणधर वाणी पढ़ने की ''चंदनामती'' देशना मिली।।

इसीलिए यह उत्सव, आया है पहली बार।
गौतम गणधर वर्ष मनाकर बोलो जय जयकार।।3।।

जिनवाणी स्तुति

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

हे सरस्वती माता, अज्ञान दूर कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।

श्रुत का भण्डार भरा, तेरे ज्ञान की गंगा में।
जन मन श्रृंगार करा, गुरुवर मुनि चन्दा ने।।
श्रृंगार सहित माता, श्रुत ज्ञान पूर्ण कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।1।।

प्रभुवीर की वाणी सुन, गणधर ने संवारा है।
मुनिगण उस पथ पर चल, निज ज्ञान सुधारा है।।
निज ज्ञान किरण दाता, आलोक ज्ञान भर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।2।।

चंदन चंदा गंगा, तन शीतल कर सकते।
मुक्ता मालाएं भी, नहिं मन को हर सकते।।
''चन्दना'' सभी जग को, शारद मां का वर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।3।।